पंचम अध्याय

मृणाल पाण्डे के नाटकों में स्त्री-विमर्श

(1) 'जो रामरचि राखा' नाटक में स्त्री-विमर्श

(2) 'आदमी जो मछुआरा' नहीं था' नाटक में स्त्री-विमर्श

(3) 'काजर की कोठरी' नाटक में स्त्री-विमर्श

(4) 'चोर निकलकर भागा' नाटक में स्त्री-विमर्श

(5) 'शर्मा जी की मुक्तिकथा' नाटक में स्त्री-विमर्श

(6) 'सुपरमैन की वापसी' नाटक में स्त्री-विमर्श

(7) 'धीरे-धीरे रे मना' नाटक में स्त्री-विमर्श

'जो राम रचि राखा' नाटक में स्त्री-विमर्श-

आधुनिक महिला नाटककारों में मृणाल पांडे का महत्वपूर्ण स्थान है। 'जो राम रचि राखा' नाटक श्री विजय दान देथा की राजस्थानी लोककथा खोजी से अनुप्रेरित होकर लिखा गया है। यह नाटक स्त्री-विमर्श की पड़ताल करता है। इस नाटक के बारे में जो जानकारी मिलती है वह इस प्रकार है- "जो राम रचि राखा नाटक पहली बार मध्यप्रदेश कला परिषद द्वारा आयोजित 'पहले पहल' उत्सव में दिसंबर अस्सी में भोपाल की नाट्य संस्था रंगायन द्वारा श्री भाऊ खिरवड़कर तथा श्री प्रशांत खिरवड़कर के निर्देशन में खेला गया। इसके बाद इसका प्रथम प्रारूप 'नटरंग' (अंक 36) में प्रकाशित हुआ। 81 में श्री राम सेंटर फॉर आर्ट एंड कल्चर, दिल्ली की निर्देशिका श्रीमती पन्ना भरत राम ने इसे अपने सेंटर के पांडुलिपि संग्रह के लिए चुना और जनवरी 82 में यह श्री राम सेंटर की रंग मंडली द्वारा श्री वंशी कौल के निर्देशन में दिल्ली में मंचित हुआ। दल ने तदुपरांत इस नाटक को जबलपुर, लखनऊ तथा कानपुर में भी प्रदर्शित किया।"[1]

यह नाटक कुल मिलाकर तीन अंकों में और सात दृश्यों में लिखा गया है। नाटक की शुरुआत नान्दी पाठ से होती है जिसमें शिव के साथ भवानी (पार्वती) की स्तुति की गयी है। इस नाटक में स्त्री सावित्री और बड़ी रानी और छोटी रानी की सहनशीलता एवं मर्यादा को दिखाया गया है। अपने ही समाज में सावित्री जैसी कई स्त्रियाँ मानवीय शोषण का शिकार हैं। बड़ी रानी और छोटी रानी के उस विवशता को रेखांकित किया गया है

जो चाह कर भी नहीं कर पाती हैं। राज और समाज की सत्ता सेठ मन्ना के हाथ में है तथा स्त्रियां अपने अधिकारों से वंचित हैं। अपनी परिस्थिति एवं आकांक्षाओं की शिकार ये स्त्रियां हमारे समाज में पड़ी रहती हैं। इस समाज में पुरुष अपनी मनोवृति एवं ताकत के बल पर उन्हें गुमराह करता रहता है और स्त्रियों की आकांक्षाओं को कुचलता रहा है। सामाजिक मनोवृतियों का आवरण डालकर स्त्रियों पर अत्याचार करता है। सेठ मन्ना के यह आंकड़े भी नाटक में पितृसत्ता के तानाशाही को रेखांकित करते हैं।

नाटक के प्रारंभ में माँ भवानी की स्तुति करके स्त्री को महाशक्ति के तुल्य समझा गया है। वह युग था कि जब स्त्री महाशक्ति के रूप में अवतरित होकर मानव समाज को संकट से बचाया था। आदर्शवादी राम ने भी महाशक्ति की ताकत के आगे घुटने टेक दिए थे लेकिन आज वही स्त्री अपने समाज में कितना न्याय पाती है यह चिंतन का विषय है? यह नाटक कोयल की कूक और मधुर स्वर से गुंजायमान होता है। कोकिल और नंदी के गान से यह नाटक अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाता है। सरलता, सहजता तथा विनयशीलता की पराकाष्ठा को संदर्भित करने वाला यह नाटक स्त्री जीवन की संपूर्ण मनोवृतियों को दर्शाता है। नाटक में सर्वप्रथम नान्दी का प्रवेश होता है। नाटक को शुरू करने का प्रारंभिक जिम्मा नान्दी को ही है। वह आता है और माता पार्वती और शिव शंकर के बहस को दर्शकों के सामने रखता है। बीच में वह (नान्दी) कोयल से वार्तालाप करता है और कहता है कि तुम भी आज उत्सुक हो, इसके साथ माता पार्वती को कोमल

हृदय वाली कहता है। स्त्री जीवन की बुनियादी महिमा को पार्वती के माध्यम से मृणाल पांडे ने गढ़ा है। कोकिल कंठ की मधुर आवाज को स्त्री जीवन के उल्लास का प्रतीक स्वीकार किया गया है।

नाटक में पात्रों की संख्या अधिक है जिसके कारण नाटक के दृश्य और अंक कई बार बदल गए हैं। नाटक में कुल 12 पुरुष पात्र हैं और 4 महिला पात्र हैं। रंगमंचीयता की दृष्टि से पात्रों की अदला-बदली में कठिनाई उत्पन्न होती है। नाटक में पुरुष पात्रों की अपेक्षा स्त्री पात्र ज्यादा सशक्त हैं। लोकनाट्य की कार्य पद्धति पर मनःस्थिति को स्पष्ट करने के लिए पात्रों की संख्या बढ़ गई है। लोकनाट्य का वह सुरीला अंदाज जीवन को भी लोकनाट्य एवं भावनाट्य दोनों की कड़ी को जोड़ता है। नाटक में रामलाल धन्ना सेठ पिता है एवं श्यामलाल मन्ना सेट पुत्र है लेकिन विचारधारा में दोनों एक दूसरे से अलग हैं। सम्पूर्ण नाटक में पुत्र मन्ना सेठ क्रांतिकारी विचारक के रूप में देखने को मिलता है। जनता के सुख-दुख की परवाह उसी को है। मन्ना सेठ सभी को अर्थात (दीवान जी, मुसाहब, उप मुसाहब) सबको कर्तव्यों के प्रति सचेत करता रहता है। दर्द के मनोभावों को नाटक में उतारने का प्रयास मृणाल पांडे ने किया है। यह नाटक केवल मनुष्यता ही नहीं दिखाता बल्कि मानव कल्याण की भावना से अनुप्रेरित है। नाटक में सावित्री स्त्री जीवन की विसंगतियों को बड़ी कड़वाहट के साथ व्यक्त करती है। मन्ना सेठ के क्रांतिकारी अंदाज से वह भी प्रेरित है। अपने पति के देहांत हो जाने पर भी जीवन जीने की आकांक्षा को बरकरार रखती

है। स्त्री-अस्मिता की गहराई भारतीय समाज में ऐसी ही स्त्रियों में देखने को मिलती है।

नाटक के दूसरे अंक के दृश्य दो में स्त्री सावित्री का प्रवेश होता है। सावित्री एक अधेड़ औरत है। सिर पर टोकरी रखकर बायीं तरफ से वह आती है। नाटक में मुसाहब सावित्री से पूछता है कि तुम्हारे पति की तेरहवीं हो गई तब वह कहती है कि हा हो गई, अब जाकर सूतक कटा। सावित्री छोटे सेठ मन्ना सेठ से मिलना चाहती है, अपने दुख-दर्द को बताना चाहती है। वह जानती है कि मेरे दुःख- दर्द और मेरी परेशानियों को वही दूर कर सकता है। नाटक में नान्दी सावित्री को हमेशा चिढ़ाता रहता है, हंसी-ठिठोली करता है जो सावित्री को नापसंद है। दुःख के दिनों में स्त्री जीवन की विसंगतियों को समझने की बजाय हंसी उड़ाता है। स्त्री जीवन की संवेदनाओं को न समझने वाले ऐसे लोग अक्सर समाज में मिल ही जाते हैं जिनके लिए स्त्रियां मात्र एक ढांचा है। नंदी के बातों का जवाब देती हुई सावित्री कहती है अरे- "तू बंदरमुखी, तेरा बाप बंदरमुखी। मुझ रांड-बेवा से ठिठोली करता है? नासपीटे, मुँहझौसे, अरे तेरी ठठरी उठे, तुझे कोढ़ फूटे।"[2]

सावित्री के पास समस्याएं जरूर हैं लेकिन वह किसी की बात को बर्दाश्त नहीं करती। अपनी मर्यादा के खिलाफ बात करने वालों को करारा जवाब भी देती है। स्त्री कितनी भी सहनशील हो जब वह अपने विरुद्ध बातें सुनती है तो क्रोधित हो जाती है, सावित्री भी इसी तरह की स्त्री है। स्त्री जीवन की इस बात को शिवमूर्ति के उपन्यास केसर कस्तूरी में देखा जा

सकता है, जिसमें बिमली के माई का यह कथन स्त्री जीवन का सीधा-सीधा चित्र उपस्थित करता है -" मेरी बिटिया जन्म भर दूसरे की कुटौनी-पिसौनी, गोबर-सानी करे। फटा-उतारा पहिरे। तब इनकी छाती ठंडी रहेगी,,,,,, एक टूका रोटी के लिए दूसरे का लरिका सौचाए ,,,,,भट्ठे पर कौन (बिगवा) भेड़िया बैठा है। सवेरे से शाम तक काम करो फिर अपने घर। एहमा कौन बेज्जती ? गाँव के लोग केहू के चूल्हा के आग बरदास नहीं कर सकते, जैसे इनकी छाती पर जलती है। इन्हीं लोगन के चलते हमार सोना जैसन बेटवा हाथ से निकरि गवा।"[3]

सावित्री अपने पति के अत्याचारों से परेशान थी। उसका पति अक्सर रात में शराब पीकर आता था और उसके साथ मार-पीट, गाली-गलौज करता था। इन सब से त्रस्त आकर सावित्री उसे बददुआएं देती थी। वह मानती थी कि वह पति नहीं कसाई है। दांपत्य जीवन के अनुभवों को मृणाल पाण्डे ने जिस वेग एवं संचेतना से दिखाया है वह केवल मार्मिक ही नहीं आज के समय के दांपत्य जीवन के क्रियाकलापों को दर्शाता है। अक्सर समाज में इस तरह के पुरुष मिल जाते हैं जो विवाह के बाद स्त्रियों पर अत्याचार शुरू कर देते हैं। मादक चीजों का सेवन करने से व्यक्ति विलासी एवं चरित्रहीन हो जाता है, सावित्री का पति भी उसी रास्ते पर चल रहा था। अपनी संपूर्ण आकांक्षाओं को छोड़ स्त्री पति का वरण करती है मगर वही पुरुष स्त्री के लिए विपत्ति बन जाता है। नाटक में स्त्री पात्र सावित्री का पति नशेड़ी था, घर-परिवार की जिम्मेदारी से दूर रहता था। सावित्री घर

का खर्च मजदूरी करके उठाती थी। सावित्री कहती है- "मुआ शराबी, कबाबी, कुचाली क्या नहीं था? कोई लत ऐसी नहीं थी जो उसमें न हो। गांजा,चरस, जुआ क्या नहीं किया उसने? जब अपनी महतारी का लुगड़ा बेचकर जो नौटंकी देख आए उसे क्या कहोगे? सोलह वर्षों से दे मार-मार के मेरी यह गत बना दी कि टाँग भी टेढ़ी हो गई।"[4]

हमारे समाज में बहुत ऐसे लोग हैं जो अपनी करतूत से स्त्रियों को बदनाम करते हैं और हमेशा नशे में धुत रहते हैं। अपनी सोच-समझ को पीछे छोड़कर स्त्रियों को यातनाएं देते हैं और उनके जीवन को नर्क बना देते हैं। सावित्री के पास दूसरी समस्या अपनी बेटी के विवाह को लेकर है। उसके पास पैसे, धन कुछ भी नहीं है इसलिए वह शायद छोटे सेठ से मिलने आई है। वह मुसाहब से कहती है कि मुझे छोटे साहब का दर्शन करा दो मेरी जरूरतें पूरी हो जाएंगी। नाटक में संवाद-योजना अत्यंत सराहनीय है। पुरुष-पात्रों की अपेक्षा स्त्री-पात्र ज्यादा भावुक हैं। स्त्रियां अपनी बातों को सीधे-सीधे पेश करती हैं। बे रोक-टोक के अपनी समस्या को समाज के सामने रख देती हैं। हमारे समाज में ऐसे कई लोग हैं जो औरतों को बदनाम करते हैं और अंत में हत्या भी कर देते हैं। हमेशा नशा में धुत रहने वाले पुरुष स्त्रियों पर कितना जुल्म करते हैं? स्त्रियों को देवी कहने वाला समाज उन्हीं की ऐसी दशा करता है। 'जो राम रचि राखा' नाटक में दहेज की समस्या भी है। सावित्री की एक पुत्री है जिसकी शादी होना बाकी है लेकिन दहेज के कारण व विवाह करने में समर्थ है। संवाद-योजना इतना

मार्मिक है कि स्त्रियों के जीवन के लाचारी को सरल तरीके से और जीवन्त बनाकर पेश किया गया है। उपमुसाहब से उसकी (सावित्री) की पुत्री का विवाह हो जाता है जिससे वह चिंता मुक्त हो जाती है। मानवीय मूल्यों का पालन करते हुए भारतीय परिवेश में स्त्री की विडंबना को कितने लोग समझ पाते हैं? इस नाटक में उल्लेख किया गया है। सावित्री किसी गैर से नहीं बल्कि अपने पति के कारनामों से परेशान थी। जीवन के संघर्षों से परेशान स्त्री जब अपने कष्टों को झेलने की आदी हो जाती है तब अपने ही पति को मारने के लिए आमादा हो जाती है। इस नाटक में यह मिलता है कि स्त्री जब अपने दुःखों से त्रस्त हो जाती है तब निराश, हताश और कुंठित हो जाती है। इतना ही नहीं तब वह अपने बचाव का रास्ता भी निकाल लेती है। इस संसार में रहकर अपने कष्टों को अपने अनुकूल बना लेती है। तब स्त्री सिर्फ यही कहना चाहती है कि- 'नहीं अब गाया जाता देव तुम्हारी वीणा का यह राग'।

स्त्री-संवेदना का मार्मिक पक्ष इस नाटक की धुरी है। बड़ी सहृदयता और सहजता से सावित्री अपने जीवन के दर्दों को सेठ मन्ना साहब के सामने रखती है। सेठ उसे एक हजार अशर्फियाँ देता है तथा सावित्री को परेशान करने वाले सावित्री के पति को मौत के घाट उतार देता है। स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में यह नाटक समस्या समाधान की दृष्टि से मानव जीवन की यात्रा को एक नई दिशा देता है। आज के समय में सेठ मन्ना साहब जैसे लोगों की बहुत जरूरत है। सावित्री का पति उसे बहुत परेशान

करता था। पति की मृत्यु के बाद सावित्री स्वतंत्र हो जाती है और उसकी सारी समस्याएं खत्म हो जाती हैं। इसके साथ ही साथ जब उसकी पुत्री का विवाह भी हो जाता है तब वह अपनी परेशानियों से बिल्कुल मुक्त हो जाती है। स्त्रियों के जीवन में क्या-क्या परेशानियां हैं, इन परेशानियों की कथा वह किससे कहें? समाज में स्त्री की समस्या को कोई देखना नहीं चाहता। युग-युगांतर से चली आई स्त्रियों की यह दशा आज भी साहित्य में बड़ी आसानी से देखने को मिल जाती है। साहित्य की कई विधाओं में स्त्री जीवन की समस्याएं लिखी जा रही है। लोग केवल स्त्रियों पर सवाल उठाते हैं, स्त्री- विमर्श इन्हीं मुद्दों से आज भी जूझ रहा है। आज स्त्री के पहनावे, रहन-सहन आदि को लेकर रोज नए-नए सवाल खड़े हो रहे हैं ।

नारीवाद पर अब तक बहुत से साहित्यकारों ने लिखा है लेकिन उनके अधिकारों पर आज के संदर्भ में बात करना बहुत जरुरी है। नारी को उसकी शक्ति का आभास कराना जरुरी है। नारी को शक्ति देने एवं उसके जागरण की बात भगवती चरण वर्मा अपने नाटकों में करते है। भगवती चरण वर्मा कहते हैं कि- "दूसरे की बातें सुनने की बजाए अपने ही अंदर से अपने प्रश्नों का उत्तर पाने का प्रयत्न करो ! देखती हो वह दीपक ! वह बुझ रहा है ! नया दीपक जलाओ, सुषमा अपने प्राणों का स्नेह उसमे भरो ! निकल पड़ो अपने प्राणों का दीपक जलाने वालों को इकट्ठा करो! शक्ति बनकर मानवता को अपना बल प्रदान करो, विश्व में त्याग और बलिदान की भावना जागृत करो।"[5]

स्त्री जीवन की समस्या को इस नाटक मे नाटककार ने दिखाया है । स्त्रियों की संवेदना को नाटक में बड़ी ताजगी के साथ दिखाया गया है। स्त्री संवेदना स्त्री-संवादों में दिखाई देती है। नाटक में सावित्री जो कि तेज तर्रार स्त्री है वह संपूर्ण तंत्र को विफल कर देना चाहती है। सावित्री में प्रवेश करने पर नंदी हंसता है तो सावित्री क्रोधित हो जाती है। अगर देखा जाए तो गरीब और असहाय औरतों पर सब हसते है। स्त्री को सम्मान की दृष्टि से देखने के बजाए पितृसत्ता की चाल पर चल रहा समाज स्त्री को उग्र करने पर मजबूर कर देता है। नारी जीवन की विडंबना को नारी ही समझ सकती है।उसकी परेशानियों, दुख-दर्द, हताशा, निराशा आदि का मूल्यांकन स्त्री साहित्यकारों ने अपने-अपने साहित्य में किया है। नारी जीवन की परिस्थिति का मूल्यांकन करते हुए गिरीश रस्तोगी ध्रुवस्वामिनी की नाट्य समीक्षा के माध्यम से बताते है जिसमें मंदा कहती है कि- "नारी हृदय जिसके मध्य बिंदु से हटकर शास्त्र का एक मंत्र कील की तरह गड़ गया है और उसे अपने सरल प्रवर्तन चक्र में घूमने से रोक रहा है।"[6]

स्त्री चरित्र की दृष्टि से यह एक सफल नाटक है। नाटक में सेठ मन्ना के मां का दर्द दिखाई देता है। वह अपने जीवन की सच्चाई को एक ही झटके में बयां कर देना चाहती है। हमारा समाज भले ही कहे कि स्त्री के जीवन में कठिनाइयां नहीं है लेकिन समाज में स्त्रियां अपने दर्द को बड़ी बेबाकी से व्यक्त करतीं हैं। यहां भी मन्ना सेठ की माँ अपनी सच्चाई को समाज के सामने रखना चाहती है। अंदर की बातों को एक झटके में ही

कह देना चाहती है। वह जानती है कि मेरे इन बातों से किसी को कोई फर्क नहीं पड़ेगा लेकिन फिर भी अंतर्मन में जो उसे वेदना साल रही है वह उस वेदना को बताना चाहती है वह कहती हे कि-"यही कहने को तो आज मैंने तुझे रोका है यहां, पच्चीस साल चहारदीवारी में काटने के बाद मैने यही पाया है कि प्रतिद्वंदी की ताकत को कूते बगैर उसका तोड़ नहीं पैदा किया जा सकता।"[7]

अर्थात उसकी माँ धन्ना सेठ के अत्याचारों की कहानी को व्यक्त करती है कि किस तरह अपनी मनमानी करता है। प्रजा से लेकर अधिकारियो तक किसी की बातें नहीं सुनता। चाहे प्रजा का शोषण हो या स्त्री का, वह कुछ नहीं बोलता। सब कुछ आसानी से देखता रहता है और स्त्रियों की दशा, परेशानियों एवं उनकी मांगों को दरकिनार करता रहता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह जो कहती है कि चहारदीवारी में कई साल बंद रहने के बाद ही मैंने यही सोचा है कि जो राजा या स्वामी प्रजा का ध्यान न दे उसे हटा ही देना चाहिए एवं उसके अत्याचार को सदैव के लिए खत्म कर देना चाहिए नहीं तो ऐसी ताकते आने वाली पीढ़ी को ही बर्बाद करती रहती है। इस संदर्भ में श्यामसुंदर पाण्डेय अपनी पुस्तक 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक संवेदना और शिल्प' में बताते हैं जिसमे श्रीमती शुक्ला शोभा से कहती कि- "आजकल जिसे औरतों की हिम्मत कहते हैं उसी की बात कर रही हूँ। औरत जरा सा अपने को ढीला छोड़ दे तो कहाँ की कहां जा सकती

है। औरतें क्या आजकल तो आदमी भी अपनी बीवियों के बूते पर तरक्की करना बुरा नहीं समझते।"[8]

सत्ताधारी वर्ग के द्वारा स्त्रियों का शोषण इस नाटक के केन्द्र में है। स्त्री-विमर्श की दृष्टि से यह नाटक सत्ताधारियों, राजनीति एवं अधिकारियों की पोल खोलता है। उनके किये गए करतूत का पर्दाफास करता है। बड़े-बड़े वादों को करने वाले, राजनीतिक जीवन जीने वाले , राजनीति के पर्दे में छुपे हुए इन सफेद कुर्ते वाले नेताओं पर भी यह नाटक कुठाराघात करता है। शहर में चोरी की घटना को लेकर फरमान जो जारी हो जाता है कि सबको पूछ-ताछ की जरुरत पड़ने पर कोतवाली ले जाया जाए। दीवान भी पूरी तरह राज्य के पुरुषों को छोड़ देता है और केवल महिलाओं से पूछ-ताछ करता है। हमारे समाज में स्त्री घर सभालने का कार्य करती है। परिवार की मर्यादा रखती है लेकिन इस समाज के रखवाले उन पर उँगलियाँ उठाने से नही चूकते। घर में स्त्रियां होती हैं, हर परिवार की संपूर्ण जानकारी स्त्रियों को रहती है। उन्हीं को पकड़कर प्रशासन मामले की जाँच करना चाहता था। मृणाल पाण्डे ने यह इंगित करने का प्रयास किया है कि 80 के दशक में जिस तरह से प्रशासन निष्क्रिय बना रहा और सरकारी आदेश हवा-हवाई ही रह गए। योजनाओं का लाभ जनता को नहीं मिला, प्रशासन विफल था,और नौकरशाही, राजशाही का बोलबाला बरकरार था।

इसके अलावा इस नाटक में राजनीति पर भी प्रहार किया गया है। राजनीति ऐसी होनी चाहिए जो लोक कल्याण करें, राजनीति ऐसी न हो कि जिससे जनता परेशान हो। मगर आज राजनीति का ढंग बदल गया है। राजनीति करने वाले लोगों को केवल अपना फायदा दिखाई देता है, जनता का ध्यान ही नहीं होता। मन्ना सेठ चोरी स्वीकार कर लेता है फिर ही प्रशासन के कान बंद है। उसे जेल में नहीं डाला जाता। दीवान मन्ना सेठ को पकड़ने के बजाए कहता है कि- "ये बाल धूप में ऐसे सफेद नहीं किये सेठ साहब। अच्छे कुल की तालीम भी अच्छी चीज होती है। आपके कर-कमल भला ऐसे काम में गंदे होंगे? कभी नहीं। अरे, क्या हम नहीं जानते कि चोरी-चकारी छुटभईयों का, कम जातो का काम है, जिनके घर में दाना नहीं और मन में कुसंस्कार ही कुसंस्कार है।"[9]

चोरी या गलती होने पर केवल निम्न वर्ग को ही पकड़ा जाता है, उच्च वर्ग को को छोड़ दिया जाता है। लगता है की सरकार और राजनीति का सारा दर्द झेलने की लिए ही निम्न वर्ग बना है। निम्न वर्ग चोरी करे तो सजा है मगर पूंजीपति करे तो पुलिस विश्वास नहीं करती क्योंकि पुलिस को सत्ताधारी लोगों से पैसे मिलते हैं साथ ही उनके खिलाफ बोलने कौन जाए? नाटक में यह विसंगती देखने को मिलती है। उपमुसाहब स्वामी भक्ति करता है मन्ना सेठ की लेकिन पक्ष में रहता है धन्ना सेठ के। 21 वर्ष का मन्ना सेठ अपनी जिंदगी जनता के बीच बिताना चाहता है। उसे अमीरी से घृणा हो गई है। मन्ना सेठ शादी नहीं करना चाहता। सबकी सेवा

करने की आकांक्षा रखता है। साथ ही साथ नाटक में निम्न वर्ग की जिंदगी का जिक्र मिलता है। सर्वहारा वर्ग आज समाज में दो वक्त की रोटी के लिए संघर्ष कर रहा है, वहीं महलों में रहने वाले लोग उनका शोषण करने से नहीं चूकते। मृणाल पाण्डे पूंजीपतियों के अत्याचारों का राज खोला है। कुत्तों को चाय, बिस्कुट खिलाने वाला वर्ग गरीबों को अपने ही खिलाफ विद्रोह करने को मजबूर कर देता है। मजदूर वर्ग संघर्ष की चक्की में पिस रहा है। वह जानता है कि उच्च वर्ग के आदमी के बीच नहीं बैठ सकता है। इस नाटक में राजनीति की छाया भी दिखाई देती है। गरीब मजदूरों की चेतना मृणाल पाण्डे को कहीं न कहीं जीवन जीने के संदर्भ में सालती रहती है। जीवन के मजे उड़ाने वाला ये सेठ साहूकारों का वर्ग गरीबों की प्रति उदासीन होते हैं। यह नाटक जब विरोधाभास की स्थिति में पहुंचता है तब मानवीय जीवन की गाथा एवं समाज की सच्चाई को बयां करता है।

मृणाल पाण्डे ने इस नाटक के माध्यम से पुलिसिया तंत्र का भी जिक्र किया है। इस देश में पुलिस कितना सशक्त है? वह अपने कार्यों का निर्वहन कैसे करती है? इससे यह पता चलता है कि नाटक में पुलिस का कानून कितना सशक्त है? इस समाज में वर्दी को धारण करने वाले कानून के रक्षक है या नही यह स्पष्ट हो जाता है। सामाजिक संदर्भ में संवेदना से परे सेठ मन्ना समाज के लोगों को अपना हक मांगने को कहता है, वह सबको सचेत करना चाहता है कि राजनीति और प्रशासन दोनों मिलकर जनता का गला घोट रहे हैं। भूखे मजदूर अपना पेट बजा रहे हैं, उनको

खाने को कुछ नहीं मिलता है तो वे कहा जाएं? यहां भी मजदूरों के माध्यम से श्रम करने वाले लोगों को हक़ दिए जाने की बात की गई है। इस संसार रुपी परिवार में रहकर मनुष्य जीवन के संघर्षों का सामना करता है। मन्ना लाल का पिता का परिवार का मुखिया है। लक्ष्मी नारायण मिश्र ने अपने नाटक 'सिंदूर की होली' में पारिवारिक जीवन का जिक्र करते हुए कहते हैं कि- "परिवार का योग्य व्यक्ति मरता है तो दुःख होता ही है लेकिन कोई करे तो क्या करें? संसार में कोई भी पूरे तौर पर सुखी तो रह नहीं पाता। यही संसार की लीला है।अब उनके घर का कार्य कैसे चलता है।"[10]

नाटक में सामाजिक उथल -पुथल मूल्यों को प्रकट करता है। मन्ना सेठ का मानना है कि समाज में यदि निम्न वर्ग की आर्थिक स्थिति सुधर गई हो तो समाज सुधार जाएगा इसलिए वह अमीरी के खिलाफ आवाज उठाता है। यह अमीर लोग चाहे तो समाज को आर्थिक सहारा देकर उसमें परिवर्तन कर सकते हैं। मन्ना सेठ कहता है कि- "गाड़ी पर बैठ कर गरीबों के खून मूल की नलियों से चूसना, अबलाओं के गहने गिरवी रख कर सूद पर कर्ज देना और फिर गला दबा कर वसूल करना, इन भूखे नंगों को आधे पेट मजूरी देकर इनसे हाड़ तोड़ काम कराना, इससे भी गंदा कोई धंधा हो सकता है भला?"[11]

नाटक के अंत में ह्रदय परिवर्तन दिखाई देता है। महाराज धन्ना बेटे मन्ना से खुश होकर पुरस्कार लेने को कहता हैं। नाटक की अंतिम दौर में शांत रस की उतपत्ति होती है।प्रत्येक मनुष्य जीवन के अवसाद को कम

करना चाहता है। मनुष्य जब जीवन की गहराइयों से परिचित हो जाता है तब वह यही कहता है जैसा धर्मवीर भारती अंधायुग में कहते है -

आज मुझे भान हुआ।
मेरी वैयक्तिक सीमाओं के बाहर भी
सत्य हुआ करता है,
आज मुझे भान हुआ। (धर्मवीर भारती - अंधायुग)

'आदमी जो मछुआरा नहीं था' नाटक में स्त्री- विमर्श':-

'आदमी जो मछुआरा नही था' मृणाल पाण्डे का बहुचर्चित नाटक है। स्त्री नाटककारों की परंपरा में मृणाल पाण्डे प्रयोग की टहनी पर तथा नाट्य शिल्प की अद्भुत धारा में गिनी जाती हैं। स्वतंत्रता के बाद नाट्य शिल्प के लेखन को तथा जीवन को मंच पर लाने का काम जो नाटककारों ने किया है वह बहुत ही आसान है। जीवन को केवल संत्रास, दुःख, स्वेच्छाचारिता के मसाले में लपेटकर नहीं देखना चाहिए बल्कि जीवन की आकांक्षा एवं विकास की दृष्टि से मूल्यांकन करना चाहिए। स्त्री जीवन की विडंबना, गांव शहर में रहने वाली स्त्रियों की स्थिति, प्राचीन काल से लेकर अब तक की स्त्रियों का जो खाका मृणाल पांडे ने तैयार किया है वह आने वाले समय में 'हिंदी नाटक विधा' में स्मरणीय रहेगा।

'आदमी जो मछुआरा नहीं था' एक जानी-मानी यूरोपीय लोककथा 'द फिशरमैन एंड हिज वाइफ' को शुरुआती बिंदु के तौर पर इस्तेमाल करता

है। नाटक का केंद्रीय पात्र एवं समर्पित नौकरशाह है जो अपनी एकछत्र महारानी का स्वामीभक्त एवं तावेदार है। अपनी आका की इच्छा और अपनी तथा अपनी पत्नी की महत्वाकांक्षा की दशाओं से उम्र भर काम करने के बाद वह पाता है कि मनुष्य के लिए उसकी स्वतंत्रता और नियति अंततः एक निजी सवाल है। एक दुविधा भरी महत्वाकांक्षी राजसेवक के मन का राज- समाज तथा निजी जीवन से जुड़े तीखे सवालों के टकराव से जूझना और उसके परिवार का बिखराव इस नाटक की त्रासदी का मूल है।"[12]

यह एक दुखांत नाटक है। यह नाटक 1984 में 'अभियान' द्वारा राजेंद्रनाथ के निर्देशन में श्रीराम सेंटर तलघर में खेला गया। यह नाटक मनुष्य की सामाजिक स्थिति को व्यक्त करने वाला नाटक है। अपने ही घर- परिवार मे रहकर मनुष्य किस तरह जीवन के संघर्षों से खेलता रहता है? यह नाटक में दिखाया गया है। यह नाटक तीन अंकों का है। पहले अंक में दो दृश्य तथा दूसरे, तीसरे अंक में तीन-तीन दृश्य हैं। साज- सज्जा एवं वातावरण की दृष्टि से यह नाटक एक उम्दा नाटक है ।नाटक का पूरा कार्य- व्यापार एक कमरे में घटित होता है। यह एक दीवान खाना है जिसमें दो भाग हैं पहले- भाग का हिस्सा पाश्चात्य सभ्यता का है तथा दूसरा भाग छोटा एवं ऊंचा भाग जहां एक ठेठ हिंदुस्तानी बैठक है। पात्रों की संख्या नाटक के अभिनय के अनुसार ही है।

नाटक का आरंभ स्त्री रुक्मिणी के घर के कार्यों की उलझन से लेकर शुरू होता है। वह झाड़न से एक तकिए को झाड़ रही है। उफ यह गंदगी, कितना भी झाड़ो- पोछो फिर भी धूल.....। नाटक में बीच-बीच में ध्वनि, कार्य बदलते रहते हैं। स्त्रियां घर के कार्यों में कितना व्यस्त होती हैं? परिवार का जिम्मा एवं बच्चों की देखरेख हमेशा से स्त्री के पाले में फेंका गया है। इसलिए रुक्मिणी भी उसी दायित्वों का निर्वहन कर रही है। वह घर के बुजुर्गों का भी देखभाल करती है। समय पर खाना देना, बच्चों को स्कूल भेजना तथा पति को ऑफिस के लिए जाने का इंतजाम करना, सभी कार्यों को लेकर मानसिक और शारीरिक रूप से घर का बोझ उठा रही है। भारतीय संस्कृति में स्त्री को परिवार की नींव माना जाता है। मेहमानों से लेकर बाहरी दुनिया के कार्यों में सलाह, विरोध तथा भावनाओं, आकांक्षाओं के ताल-मेल में स्त्री सदा भागीदारी बनी है कौन नहीं जानता? देखा जाए तो यह नाटक स्त्री- विमर्श की दृष्टि से सफल नाटक है।

हमारे समाज में बुजुर्गों की क्या स्थिति है? जीवन के अंतिम पड़ाव पर भी किस तरह अपने ही लोगों द्वारा उपेक्षित हो जाते हैं? इसका चित्रण नाटक में बड़ी संजीदगी के साथ किया गया है। जीवन के अंतकाल में मानव जिस संतान को अपनी लकड़ी का सहारा समझता है वे अपने बूढ़े मां-बाप के साथ कैसे- कैसे बर्ताव करते हैं? यह बात तो एकदम सत्य है कि बुढ़ापे में बचपन की जो कल्पना होती है बुजुर्ग उसी अंदाज में जीना चाहते हैं, मगर जीवन की इस दौर में वे क्या कर सकते हैं?

नाटक के प्रथम दृश्य में जीवन की सारी समस्याओं का अंकन मिलता है। रुक्मिणी को सफाई बहुत पसंद है। वह घर को साफ- सुथरा रखना चाहती है साथ ही साथ परिवार में व्याप्त कलुषता एवं घृणा को खत्म करना चाहती है। हर वक्त परिवार की परवरिश में लगी रहती है सफाई को लेकर व कहती है कि किस-किस को मना करो गंदगी फैलाने से बच्चे तो बच्चे बूढ़े भी.....। रंगमंचीयता की दृष्टि से यह नाटक अत्यंत सराहनीय है। नाटक के प्रथम दृश्य में ही स्टेज की शोभा, क्रिया-कलाप एवं बाहरी वातावरण का खाका प्रस्तुत किया गया है। बच्चों एवं पति का ध्यान रखने वाली रुक्मिणी परिवार को हमेशा हंसता हुआ देखना चाहती है। बच्चों का विशेष ध्यान रखती है, उसका मानना है कि अगर परिवार में बच्चे न हो तो इन उलझनों के बीच इंसान पागल हो जाए। घर में बच्चे अगर किसी वस्तु को हानि पहुंचाते हैं या नादानी करते हैं तो रुक्मिणी चिल्लाती नहीं, क्रोध नहीं करती बल्कि बच्चों को प्यार से समझाती हैं। सहानुभूति के स्तर पर परिवार का पालन करना रुक्मिणी अपनी जिम्मेदारी समझती है। पात्रों की संख्या नाटक में सीमित है। माता- पिता के अलावा दादाजी हैं, पति नंददुलारे और पुत्री ममता है, मिश्रा जी एक अन्य पात्र हैं तथा रिपोर्टर जिम्मी है साथ ही साथ दो बूढ़े तथा एक बूढ़ी तथा एक फोटोग्राफर बनी भी है। नाटक का प्रथम अंक का प्रथम दृश्य परिवार की स्थिति एवं पारिवारिक वातावरण को प्रस्तुत करता है।

नाटक के द्वितीय दृश्य में बुजुर्गों की स्थिति को भी दिखाया गया है। दृश्य दो बुजुर्गों की जीवन की विडम्बनाओं एवं मानवीय जीवन की स्थितियों का सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है ।हमारे समाज में आज बुजुर्ग किस तरह जी रहे हैं? बच्चे उनकी आज्ञा का पालन करते हैं कि नहीं यह भी एक बड़ा सवाल है। बुजुर्ग दम्पत्ती अपने ही आंखों के सामने परिवार में घटित हो रहे सारी क्रिया-कलापों को देखते हैं, समझते हैं, चाह कर भी कुछ नहीं बोल पाते। जीवन की ढलान पर वे शांत रहना ही अपनी बुद्धिमानी समझते हैं। होता भी अक्सर ऐसे ही है कि जब जीवन का अंतिम पड़ाव सामने आता है तो मां- बाप सारी जिम्मेवारी बच्चों पर छोड़कर स्वतंत्र हो जाते है। वह अपने बच्चों को खुश देखना चाहते हैं, अपनी जिम्मेवारीओं से मुक्त होकर बुजुर्ग दम्पत्ती शांत जीवन जीना चाहता है ।हमारे समाज में स्त्रियां बुजुर्गों का बहुत ध्यान रखती हैं, उनकी सेवा करने, खाना खिलाने तथा पल- पल उनका देखभाल करने एवं सेवा- सुश्रुषा में पुरुषों से कहीं आगे हैं। दृश्य दो में बुजुर्गों की दास्तान है जीवन के अंतिम क्षणों में जीवन किस तरह अंत काल की सीमा को छूने लगता है? जहां हताशा, घुटन मनुष्य के अंदर अपना स्थान बना लेती है। बुजुर्ग दम्पत्ती में बूढ़ी पत्नी शांति के साथ परिवार के दृश्य को देखती रहती है, माला फेरती रहती है ,जब सब लोगों में बातचीत जारी होती है तब भी वह माला फेरती रहती है और बातचीत को सुनती रहती है। हमारे परिवार में स्त्रियां अपने सास की कितनी देखभाल करती हैं। रुक्मिणी भी बूढ़ी सास के पास बैठी हुई है। वातावरण की दृष्टि

से देखा जाए तो नाटक का प्रारंभ मूसलाधार वृष्टि से होता है जहां पानी की ध्वनियाँ भी सुनाई देती है जो पारिवारिक चुप्पी के दौरान अधिक स्पष्ट सुनाई देती हैं। शाम का वक्त है जिससे संपूर्ण वातावरण शांत है।

बूढ़ी माँ को अपने बेटे की बहुत चिंता है ।वह अपने बेटे को हमेशा सामने देखना चाहती है। बारिश होने पर जब बेटा घर नहीं आया तो माँ कहती है कि वह बेचारा जाने कहाँ भीगता खड़ा होगा इस वक्त बारिश है कि अंधेर, लगता है जैसे हड्डियों में ठंड घुसी जाती है। बूढ़ा बुजुर्ग जो उसका बाप है वह भी अपने मन में ही सोच कर धीरे से कहता है कि इन बूढ़ी हड्डियों को तो अब बस वही चिता की आग गर्माएगी। बुढ़ापे की स्थिति में मनुष्य हमेशा मुस्तैद रहता है यह असंभव है, वहीं दूसरी ओर रुक्मिणी एक तनाव भरी दुनिया से बाहर निकलना चाहती है। सूना घर अंदर के सूनेपन को उजागर करता है। इस संदर्भ में पारिवारिक जीवन के बारे में मोहन राकेश अपने नाटक आधे अधूरे में लिखते हैं कि सावित्री अपने लड़के से कहती है कि- "मत कह,नही कह सकता तो। पर मै मिन्नत-खुशामद से लोगो को घर पर बुलाऊँ और तू आने पर उनका मजाक उड़ाये ,उनके कार्टून बनाये ...ऐसी चीजें अब मुझे बिल्कुल बरदाश्त नही है। सुन लिया ? बिल्कुल- बिल्कुल बरदाश्त नही है ।"[13]

स्त्री पात्र रुक्मिणी की स्थिति आधे-अधूरे नाटक के नायिका की तरह है, वह जब कमरे में प्रवेश करती है तो तनाव भरी जिंदगी में दिखाई देती है। वह कुर्सी पर बैठकर पत्रिका उठाती है फिर कुर्सी पर डाल देती है।

कुछ देर चुप- चाप सामने ताकती है फिर बूढ़े को देखती है, फिर बुनाई उठाकर बुनने लगती है। उसकी सारी हरकतों में एक प्रकार की तनाव भरी जिंदगी का एहसास है जैसे- उसको किसी की प्रतीक्षा हो और बीच-बीच में चौकन्नी हो जाती है। बुढ़ापे की स्थिति में में बूढ़ी माँ अपने बड़े बेटे का पूरा ध्यान रखती है। माँ का मत पूरी तरह से इस नाटक में दिखाई देता है। घर- परिवार में रहकर माँ बच्चों के लिए कितना कर जाती है भले ही संतान उस दर्द को समझे या न समझे। बूढ़ी मां हमेशा रुक्मिणी को भी इन्हीं संस्कारों को समझाती रहती है। वह परिवार में तालमेल देखना चाहती है। मनमुटाव, ईर्ष्या-द्वेष, कुढ़न- घुटन आदि को समाप्त कर देना चाहती है। बूढ़ी माँ अपने बहू रुक्मिणी को अपने पति के ध्यान देने के बारे में कहती रहती है। जब रुक्मिणी से पूछती है कि बेटा कहाँ है? रुक्मिणी की चुप्पी पर माँ बहाना बनाती है और फिर थोड़ी सी चिढ़ कर बोलती है कि ऐसी पल्ले पड़ी है और बैठे-बिठाए मेरे बेटे को वहां भेज दिया।

नाटक में दो बुजुर्गों के अलावा एक बुजुर्ग दद्दा जी का भी चित्रण किया गया है। पात्रों की स्थिति को बड़ी सावधानी से नाटक में दिखाया गया है। प्रत्येक पात्र की कार्यवाही को बड़े सलीके के साथ जैसे नाटक के अनुसार उतार दिया गया हो। अपने ही समाज में बुजुर्ग जीवन के अंत में किस तरह बेकार हो जाते हैं? अपनी जिंदगी को तुच्छ समझने लगते हैं। इस तरह का वक्तव्य ऊषा प्रियंवदा की कहानी वापसी में देखने को मिलता है। वहां भी रिटायर्ड बुजुर्ग अपने आप को फालतू महसूस करता है। ऊषा

प्रियंवदा कहती हैं कि- "लेटे हुए गजाधर बाबू घर के अंदर से विविध स्वरों को सुनते रहे। बहू और सांस की छोटी सी झड़प, बाल्टी और खुले नल की आवाज, रसोई के बर्तनों की खटपट और उसी में दो गौरैयों का वार्तालाप और अचानक ही उन्होंने निश्चय कर लिया की अब घर की किसी बात में दखल न देंगे। यदि गृहस्वामी के लिए घर में एक चारपाई के लिए जगह यहीं है तो यहीं पड़े रहेगें। अगर कहीं और डाल दी गई तो वहां चले जाएंगे। यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए कहीं स्थान नहीं तो अपने ही घर में परदेशी की तरह पड़े रहेंगे ,,,,,,,और उस दिन के बाद गजाधर बाबू सचमुच कुछ नहीं बोले।"[14]

इस नाटक में बुजुर्ग संस्कृति-सभ्यता, रीति-परंपरा का पालन करते हुए दिखाए गए हैं। भारतीय संस्कृति में बुजुर्गों को श्रेष्ठ माना जाता है। नाटक में कई जगहों पर इस तरह की बात सामने आई है। भारतीय नाटकों में बुजुर्गों का जीवन-यापन, बड़े लोगों से मेल-मिलाप, घर के संस्कारों तथा जीवन के अनुभवों को व्यक्त किया गया है। बुजुर्गों की स्थिति समाज में किस तरह से है हमें नाटक के इस अंश की वास्तविकता से पता चलता है जैसे- बूढ़ा बुजुर्ग कहता है कि हे भगवान हम दोनों के मुँह में न दाँत न पेट में आँत। पके फल है हम सब, हमें दोबारा इस सब में कौन कूदने को कहता है? दुनिया हमारी-तुम्हारी नहीं, इन्हीं की है अब। और भले-बुरे कर्म भी जो हैं, सो उन्हीं के लिए हैं। बस! इनका ठीक-गलत ये जाने इनका काम।"[15]

बुजुर्गों को पुरानी परिपाटी पसंद है। अंग्रेजी से मोह भंग हो चुका है, अपनी भाषा में बोलना बात करना ही पसंद है। पाश्चात्य सभ्यता में उतना लगाव नहीं है जितना लगाव अपनी संस्कृति से होता है। संवाद-योजना की दृष्टि में यह नाटक अत्यंत सफल है। नाटक में हमेंशा रुक्मिणी एवं दादा के बीच संवाद का दौर चलता है। रुक्मिणी को अंग्रेजी पसंद है मगर दादा को नहीं। दद्दा अपनी ठेठ सरल भाषा में ही बात करना उचित समझते हैं। रुक्मिणी आज के परिवेश को लेकर अंग्रेजी के शब्दों का इस्तेमाल करती है। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण आज हम अपने समाज में अपनी संस्कृति, धर्म, भाषा, रीति-रिवाज से दूर होते जा रहे हैं। रुक्मिणी कहती है कि- "डेंजर डिटाल के पानी में भिगो दिया होगा रामाधार ने दादाजी उससे दांत साफ हो जायेगें। किटाणु.....। दद्दा - अरे साफ होंगे ख़ाक, जानती नहीं की चीनी मिट्टी की प्याली जो है सो अशुद्ध है, भाड़ में जाए ससुर ये अंग्रेजियत। कीटाणु-कीटाणु। रुक्मिणी- रामवदन से कह दूंगी, आगे से स्टील की कटोरी में गंगाजल में भिगो देगा। दाँत जैसे चीनी-मिट्टी से नहीं बने पर कहे कौन? दद्दा- जहां देखो ससुर वहीं मलिच्छपना। नहान घर में भंगी झाड़ू लगा रहा है, खाना मेज पर बैठकर खाया जा रहा है, काँटा, छुरी से। अरे पाँच अगुरियाँ काहे को दी है विधाता ने? अंग्रेजी। अंग्रेजी। धरम-करम तो उठ गया। अब जाऊं आचमन कर आऊं, हमी तक है इस घर की मरजाद।"[16]

भारतीय संस्कृति में शुद्धता पर बल दिया जाता है। खाना मेज पर बैठकर खाना अच्छा नहीं माना जाता। बुजुर्गों में इस तरह की नाराजगी अक्सर देखने को मिलती है। इसीलिए बुजुर्ग इसे धर्म मर्यादा के केंद्र में रखते हैं। अपनी भाषा,अपनी बोली, अपना घर,अपना परिवार, अपना गाँव, अपनी संस्कृति, देसी-अंदाज, गांव-देश के मेले एवं बाजार, इसके प्रति बुजुर्गों का लगाव अधिक होता है। पाश्चात्य संस्कृति पर बहुत कम विश्वास रखते हैं। ये विदेशी चीजों से भरोसा कम करते हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र 'भारत वर्षोन्नति कैसे हो सकती है' नामक निबंध में विदेशी संस्कृति के बारे में लिखते है कि- "तुम जिस मार्किन की धोती पहनते हो वह अमेरिका की बनी है, जिस लकटाय का तुम्हारा अंगा है वह इंग्लैंड का है, फ्रांस की बनी कंघी से तुम सिर झाड़ते हो और जर्मनी की बनी चर्बी की बत्ती तुम्हारे सामने जल रही है,,,,,,,,,,, हाय अफसोस तुम ऐसे हो गए कि अपनी निजी काम की वस्तु ही नहीं बना सकते।"[17]

स्त्री रुक्मिणी एक अच्छी पत्नी एवं गृहणी है। जब तक उसका पति नन्ददुलारे नहीं आ जाता तब तक वह आने का इंतजार करती रहती है और खाना नहीं खाती है। भारतीय संस्कृति में अक्सर स्त्रियाँ पुरुषों के खाना खाने के बाद की खाना खाती हैं। ऐसा माना भी जाता है कि पुरुषों के खाने के बाद स्त्रियों को भोजन करना चाहिए। एक तरह से यहां भारतीय संस्कृति का पालन दिखाया गया है। हमारे समाज में जब सब खाना खा लेते हैं तब स्त्रियाँ खाना खाती है। इस नाटक में इसका जिक्र भी सरलता से किया

गया है। रुक्मिणी कहती है कि अम्मा जी लगता है उन्हें आने में देरी होगी आप भी जाकर सोइए वरना आपकी खासी फिर तकलीफ देगी, मैं तो बैठी ही हूँ। भारतीय नारी अपने पति, परिवार और समाज के लिए सदैव समर्पित रहती है। पति के खाने के बाद ही भोजन करती है। रुक्मिणी कुर्सी के पास बैठे-बैठे सो जाती है। अपनी भूख को बर्दाश्त करती रहती है लेकिन पति को जूठा नहीं खिलाना चाहती। अमरकांत की कहानी 'दोपहर का भोजन' में मिलता है वहां सिद्धेश्वरी भी पति के बात का अनुसरण करती है। धर्म-मर्यादा का पालन करती है। पति और बच्चों को खिलाने के बाद ही भोजन करती है। जो कुछ भी जूठा-कूठा मिलता है उसे बड़े प्रेम से खा लेती है। अमरकांत कहते हैं कि- "इसी बीच मुंशी चंद्रिका प्रसाद थके हारे आकर पालथी मारकर पीढ़ा पर बैठ जाते हैं। सिद्धेश्वरी के द्वारा दिए गए खाने को बूढ़ी गाय की तरह जुगाली करते हुए खाते हैं। फटे हाल मुंशी की खाल लटक गई है और सिर के बाल उड़ गए हैं। सिद्धेश्वरी फिर उनसे खाने को कहती है मगर वे गुड़ खाकर केवल पानी पी लेते हैं ।बची एक रोटी में वह आधी रोटी सोते हुए बच्चे के लिए रख देती है ।"[18]

भारतीय परिवार में दांपत्य जीवन में भी उठा-पटक चलता रहता है और इस नाटक में भी रुक्मिणी तथा नन्ददुलारे के बीच नोक-झोंक होती रहती है। रुक्मिणी अपना सिक्का जमाना चाहती है। नंददुलारे भी अपनी बात रखना चाहते हैं। अक्सर पति-पत्नी में इस तरह की बातें अक्सर देखने को मिल जाती है। हमारे समाज में आज भी स्त्रियां अपने अधिकारों, अपनी

बातों को बड़ी सरलता से पति के सामने रख देती हैं। उसे मानने पर मजबूर करती हैं। यहां रुक्मिणी प्रगतिशील चेतना का प्रतीक है। नाटक में वह एक ऐसी स्त्री पात्र है जो अपनी बात को बड़े हौसले के साथ रखती है। यह बात अलग है कि वह किसी की बात को काटती नहीं मगर अपनी बात को प्रमाण के तौर पर प्रस्तुत करती है। सरलता, विनम्रता और भरोसे के साथ परिवार के लोगों के साथ तालमेल रखना चाहती है। रुक्मणी को अपने पति पर भरोसा है। वह संपूर्ण कार्य को आसानी से कर लेती है। पति के साथ अपने को दुनिया के सामने दिखाना चाहती है कि हम भी किसी से कम नहीं हैं लेकिन जब सारे कार्यों के दारोमदार को अपने ऊपर ले लेती है तो किसी की सलाह का इंतजार नहीं करती। घर परिवार में छोटे बच्चों का ध्यान मां रखती है। इसके अलावा बूढ़ी दादी भी छोटे बच्चों की परवरिश में ध्यान देती हैं। इस नाटक में भी बूढ़ी दादी छोटे पोते-पोती की फिक्र करती हैं। बूढ़ी दादी रुक्मिणी को बच्चों के ख्याल रखने को कहती हैं। कभी-कभी वह खीझती हैं और कहती हैं कि- "क्या कहूं मुझे अपने पोते-पोती की फिक्र होती है। अरे शहर में नहीं थे अच्छे स्कूल जो उठाकर इतनी दूर भेज दिया महतारी ने। आज कल की लुगाइयां तो 9 महीने बच्चों को पेट में ही रख लें यही बहुत है। साल में महीने भर को घर आए सो भी बेगाने-बेगाने से। संस्कार क्या पड़ेंगे उसके।"[19]

घर में बूढ़े लोग अक्सर देसी शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। वे अंग्रेजी के शब्द नहीं बोलते अपनी ठेठ अंदाज में बात को कहते हैं। यहां पर भी बूढ़ी मां महतारी शब्द का इस्तेमाल करती है जिसे भारतीय संस्कृति की शब्दावली में महत्वपूर्ण माना जाता है। नाटक में आठवीं शताब्दी के अंग्रेजी साम्राज्य की बारीकियों के माध्यम से तत्कालीन घटना को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है ।बताया गया है कि किस प्रकार अंग्रेजों के राज्य में हुई बंदूकों के गाय और सुअर की चर्बी के कारतूस लगाकर धर्म नष्ट कर रहे थे इसलिए पुराने लोग अंग्रेजों के शासन की निंदा करते हैं। वह अपने समय के सिपाही विद्रोह की प्रशंसा करते हुए अंग्रेजी हुकूमत से घृणा करते हैं। अंग्रेजी हुकूमत जो इतने वर्षों तक भारतीय साम्राज्य को गुलाम बनाए रखी, अंग्रेजों ने भारत को लूटा और अपने मन के मुताबिक भारतीय राजाओं के राज्य को नष्ट किया और अपनी सत्ता स्थापित करके यहां पर अपनी बड़ी-बड़ी कंपनियां खोल दी। अपने उपनिवेश स्थापित किए जिसका प्रभाव काफी दिनों तक बढ़ता रहा। स्वतंत्रता के बाद संपूर्ण साम्राज अंग्रेजों का समाप्त हो गया। नाटक में अंग्रेजी साम्राज्य के बारीकियों का जिक्र मिलता है। इस प्रकार इसमें दद्दा जी कहते हैं कि- "जब से उनकी ये हेनरी मार्टिनी रैफले चली और वो क्या नाम और आर्मस्ट्रांग की टोपे-भई, सिपहगिरी की भी आब मारी गई। भई, आड़ में खड़े होके लुगाइयों की तरह रंग-बिरंगी वर्दी डांट ली, तमगे चिपका लिये और आड़ में खड़े होके पट-पट दाग भी दी। लो, मिनटों में खेल खत्म, पैसा हजम। अजी सिपहगिरी तो

तब थी जब के फौजे महीनों तक यू घूमा करें थी कि जैसे खूंखार फूकारते नाग हो, नाग। तलवारबाजों के कड़कते कड़ाके सुनके फुरफुरी उठ जाती थी, फुरफुरी।"[20]

गृहस्थ जीवन का ध्यान अक्सर स्त्रियां ही रखती हैं, पुरुष कम रखते हैं। घर के खर्चे चलाने, घर की जिम्मेदारियों को कैसे वहन करना है महिलाएं खूब जानती हैं। घर से बाहर तक के संपूर्ण कार्यों को बड़े धैर्य सावधानी से करती हैं। यहां पर रुक्मिणी गृहिणी जरूर है, मगर बहुत ईमानदारी एवं जिम्मेवारी से घर को चलाती है। समय-समय पर वह नंददुलारे अपने पति को सचेत करती रहती है। नंददुलारे डॉक्टर हैं साथ ही साथ वह मिलनसार हैं। लोग उसके पास इलाज के लिए आते रहते हैं और मिलने के लिए वक्त लेते रहते हैं। रुक्मिणी एक ऐसी स्त्री है जो पारिवारिक जीवन की सभी समस्याओं को समझते ही हल करना चाहती है। रुक्मिणी का स्वभाव सरल है, वह मृदुभाषी है। वह एक धैर्यशील नारी है, वह परिवार की विसंगतियों को बड़ी सरलता से सुलझाना चाहती है। घर-परिवार में जहां भी मान-सम्मान की बात आती है। रुक्मिणी अपनी बुद्धि से हर समस्या का उपाय खोजती है तथा हर बात का स्पष्ट उत्तर देती है। रुक्मिणी कहती है कि- "वो ओहदा भी कैसा कि इतने सालों में एक मकान भी तो नहीं बनवा पाए हम, रिटायर होकर सिर छुपाने को? क्यों रहता मेरा बेटा इस मुल्क में? क्या मिल्कियत छोड़ेंगे हम उसके लिए यहां? नौकरी की सिफारिश के अलावा एक राजकर्मचारी क्या दे पाता है अपने बच्चों को।"[21]

मनुष्य के लिए इस संसार में पैसे और नौकरी सब कुछ नहीं होते, अपनी परंपराएं, अपने मूल्य, अपने धर्म, अपनी संस्कृति ज्यादा महंगे होते हैं। स्त्रियां इन सब का विशेष ध्यान रखतीं हैं। यह बात अलग है कि आज पूरा समाज इन परंपराओं, मूल्यों से धीरे-धीरे कटता जा रहा है मगर परंपरा पालन में स्त्रियां आगे हैं। अपने सामाजिक मूल्यों को वह महत्व देती हैं। धर्म, मर्यादा के बंधन को उचित समझती हैं,उसका पालन करती हैं। यह बात और है कि नौकरी पैसा दिला सकती है लेकिन संस्कार नहीं, समाज मे सभी को अपने घर-परिवार की जिम्मेवारी भी उठाना चाहिए। रुक्मिणी के साथ साथ उसकी पुत्री ममता भी घर के कामों में लगी रहती है। समय पर स्कूल जाना समय से आना और फिर परिवार के साथ कार्यों में हाथ बटाना, घर की दिनचर्या में अपने आप को तब्दील किए रहती है। प्रारंभ से ही लड़कियों को कम बोलना, कम खाना, कम घूमना सिखाया जाता है। उन्हें संस्कारों के सांचे में ढालकर लोक-लाज की मर्यादा का पालन करने के लिए सहेजा जाता है। यही बात रुक्मिणी ममता पर ही लागू करना चाहती है। भारतीय संस्कृति में बच्चों को संस्कार बचपन से ही सिखाए जाते हैं। यह बात अलग है कि बचपन में जितनी आजादी लड़कों को होती है उतनी आजादी लड़कियों को नहीं होती है। उन्हें घर पर ही रहना, सब की बात मानना, मृदुभाषी होना, सिलाई-कढ़ाई करना आदि शुरू से ही सिखाया जाता है जबकि लड़कों को खुली छूट दी जाती है।

इस नाटक के एक अंश में रुक्मिणी ममता को यही शिक्षा दे रही है। रुक्मणी कहती है कि अगर सामान्य आदमी की तरह रही होती न तो फिर नहीं चाहती है तभी मैं कहती हूं अपने जैसों में उठ बैठ जैसे भैया। ममता कहती है कि भैया के दोस्त यहां हैं कहां मिली तो भैया की तरह बाहर चल दिए क्योंकि जिनके पास ताकत है उनके लिए वह रास्ता सबसे आसान है जो बच रहे हो या तो जाने की तैयारी में हैं या जब जब हम मिलते हैं तो ना जा सकने का रोना रोते हैं रात दिन गिन आती है मुझे उनसे अपने आप से। इस संदर्भ में स्त्री जीवन का चित्रण करते हुए स्त्री की स्थिति, मजबूरी एवं परेशानियों का जिक्र करते हुए जयशंकर प्रसाद ध्रुवस्वामिनी नाटक में लिखते हैं की- "मेरी रक्षा करो मेरे और अपने गौरव की रक्षा करो।आज मैं सरकी प्रार्थी हूं मैं स्वीकार करती हूं कि आज तक मैं तुम्हारे विलास की सर्जरी नहीं हुई किंतु यह मेरा आकार चूर्ण हो गया है मैं तुम्हारी होगा रहूंगी राज्यो संपत रहने पर राजा को पुरुष को वह उसी रानियां और स्त्रियां मिलती किंतु व्यक्ति का मान नष्ट होने पर फिर नहीं मिलता।"[22]

परिवार में रहकर रुक्मिणी बिल्कुल शांत रहना चाहती है। शांतिपूर्ण ढंग से जीवन को चलाना चाहती है। अपने बच्चों का ख्याल रखते हुए परिवार के लोगों के साथ मिलजुल कर रहना चाहती है लेकिन फिर वही पारिवारिक उठापटक चलती रहती है। कुढ़न, घुटन, कुंठा आदि मानववीय प्रवृत्तियां जैसे उसका पीछा ही नहीं छोड़ती है। पारिवारिक जीवन का ढांचा का सबसे अच्छा उदाहरण आधे-अधूरे नाटक में मिलता है जो इस प्रकार है

- "कैसी बात कर रही हैं? यहां पर सब लोग समझते क्या हैं मुझे ? एक मशीन जो कि सबके लिए आटा पीस-पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है मगर किसी के मन में जरा सा भी ख्याल है इस चीज के लिए कि कैसे मैं,,,,,,, ।"[23]

स्त्री जीवन में क्या-क्या विसंगतियां हैं, कितनी समस्याएं हैं? स्त्री के पास कितनी विडंबना हैं, स्त्री अपनी सारी समस्याएं सभी से साझा क्यों नहीं कर सकती तथा अपने मन में ही अपने जीवन के दर्दों को छुपाए रहती है। अपने कष्टों को सहती हुई सबसे क्यों नहीं कह पाती। रुक्मिणी इसी तरह की स्त्री है जो पारिवारिक घुटन को अपने मन में दवाये रखती है, वह थोड़ा चीखती है, चिल्लाती है फिर शांत होकर के अपने कार्यों में लग जाती है। रुक्मिणी और ममता में भी द्वंद्व चलता रहता है। रुक्मिणी अपनी पुत्री ममता को समझाती रहती है लेकिन जरूरत पड़ने पर ममता भी अपनी बात को स्पष्ट रूप से रुक्मिणी से साझा करती है। पैसे की लालच और नौकरी से आदमी घर में रहकर परिवार को समय नहीं दे पाता। भाग-दौड़ की जिंदगी में पैसे के चक्कर में मनुष्य अपने परिवार से, अपनी संस्कृति से, अपने खान-पान से तथा अपने संस्कारों से कटता जा रहा है। पैसे की लालच में मनुष्य विदेश जाकर नौकरी करना चाहता है, कम समय में अधिक पैसा कमा कर आगे निकलना चाहता है और घर-परिवार को छोड़कर वह फैशन परस्ती के दौर में अपने आप को महान समझता है मगर क्या यह उचित है? इस तरह के सवाल मनुष्य को हमेशा अंदर ही

अंदर सालते रहते हैं। इस तरह की बातें भी रुक्मिणी को तथा ममता को अंदर ही अंदर टीसती रहती है। रुक्मिणी ईमानदारी की पक्षधर है और भ्रष्टाचार, तनाव और घूसखोरी से दूर रहना चाहती है। इसी तरह की नौकरी से दूर अपने पति को रखना चाहती है। रुक्मिणी कहती है कि- "तुम्हारे पापा को भी मैं तुम सबसे ज्यादा जानती हूं। दम घुटता है उनका इस नौकरी में। यहां कोई कद्र नहीं है उनकी ईमानदारी की, उनकी मेहनत की। हम सब से कट गए तो क्या, जितना संतोष इस ओहदे पर आकर उनको मिलेगा, कभी सौ साल में भी मिल सकता है क्या, इन टुच्चे लोगों के बीच? अपने लिए मैंने क्या किया है आज तक ? मन मेरा भी होता था कि पार्टियों में पापा के साथ जाऊं, देश के बाहर विदेशों की सैर करूं- घर को अपनी तरह से सजाऊ।"[24]

स्त्री जीवन में कितनी समस्याएं हैं तथा वे अपने अधिकार के लिए कितना लड़ती रहती हैं? यह बात अलग है कि आज देश में उनके लिए कानून बने हैं मगर उन कानूनी अधिकारों को कितना हासिल कर पाई हैं यह सब जानते हैं? मृणाल पाण्डे ने इस नाटक में पात्रों के माध्यम से राजनीतिक ढांचे का चित्रण किया है। राजनीति के माध्यम से वे नाटक की उस तह तक जाना चाहती हैं जहाँ गरीब मजदूर से लेकर आम जनता तक इन राजनीतिज्ञों के चक्कर में परेशान है। राजनीतिक जीवन की खस्ता-हाल का चित्रण लेखिका ने नाटक में बड़ी सावधानी से किया है। राजनीति में आकर एक सीधा-साधा आदमी भी मक्कार बन जाता है। वह लोगों की

बात सुनना नहीं चाहता केवल अपनी बात कहना चाहता है। बड़े-बड़े महलों में रहने वाले, बड़ी महंगी-महंगी गाड़ियों से चलने वाले तथा जनता के बीच हाथ हिलाकर भाषण देने वाले लोग गरीबी के दर्द को कितना पहचानते होंगे? इसका जिक्र नाटक में बड़ी आसानी से देखा जा सकता है। हमारे देश का भी यही हाल है लोग अपनी बात रखने के लिए धरने पर बैठते हैं कुछ देर तक धरना चलता है फिर आश्वासन होता है, उसके बाद सब चले जाते हैं, वायदे भी धरना प्रदर्शन और भीड़ को देखकर किए जाते हैं। उसके बाद कोई उन मुसीबतों को जानना-समझना नहीं चाहता। आज देश में इस तरह की घटनाओं का चित्र देखने को मिलता है। राजनीतिक जीवन की सच्चाइयों को लेखिका ने बड़ी बेबाकी से पात्र मिश्रा जी के माध्यम से बताया है जो इस प्रकार है- "न न साहब, निराश न हो कतई- धरनों में होना ही क्या है, थोड़ी देर लीडर लीडरों से बोलेंगे, मजदूर मजदूरों से और छोकरे छोकरियों से फिर सब अपनी-अपनी राह लग लेंगे और कल सुबह के अखबार में मजा ले ले कर पढेंगे कि राजधानी में कामकाज कैसे ठप्प रहा। बस ज्यो ही धरना खत्म हुआ नहीं कि साहब लौट आएंगे। आते ही, आप तो जानते हैं कि प्रेस के बारे में अपने साहब कितने वक्त के पाबंद हैं।"[25]

मृणाल पांडे मूलतः पत्रकार हैं। उन्होंने पत्रकारिता के जीवन के अनुभवों को अपने नाटक में उतारने की कोशिश की है। पत्रकारिता जीवन में कितनी कठिनाइयां होती हैं तथा एक स्त्री के लिए इस क्षेत्र में काम करना कितना

मुश्किल होता है, उसको किन-किन सवालों से गुजरना पड़ता है तथा आज की मीडिया गरीब मजदूरों, जनता तथा स्त्रियों की सुविधा के लिए कितना काम कर रही है? इन सब का जिक्र नाटकों में किया गया है। मीडिया जीवन के अंदाज को मृणाल पांडे ने बहुत सरल तरीके से दिखाने का प्रयास किया है। जिमी एक ऐसा पात्र है जो एक रिपोर्टर है। वह जनता की वाणी को सरकार तक पहुंचाना चाहता है, उनकी समस्याओं को समाज के सामने रखना चाहता है। आज भी मीडिया में यही होना चाहिए खबर दोतरफा होनी चाहिए एक तरफा नहीं। सत्ता का उल्लेख न करके जनता के लिए काम करना चाहिए जिससे मनुष्य मीडिया पर विश्वास कर सकें। मीडिया जीवन के अनुभव को व्यक्त करते हुए जिमी कहता है कि- "हमारे पेशे में पक्ष-विपक्ष नहीं मुन्ने, खबर का दोतरफा वजन तौला जाता है। यह अपनी ईमानदारी और चतुराई का ढोल पीटते हैं, हमेशा प्रेस कॉन्फ्रेंसों में, उधर इन्हीं के विभाग के एक मुअत्तल हुए सचिव ने मुझे अंदरूनी बातों का विवरण दिया है, सारे दस्तावेजों के साथ। प्योर डायनामाइट है, डायनामाइट! एक तरफ वह- एक तरफ इनकी अपनी जवाबी सफाई- एक बम के धमाके से कम नहीं होगा यह इंटरव्यू।"[26]

आज मीडिया के क्षेत्र में स्त्रियां कम काम कर रही हैं, पुरुषों का वर्चस्व ज्यादा है फिर भी स्त्रियां अपनी समस्याओं तथा सामाजिक समस्याओं को बड़ी ईमानदारी के साथ समाज के सामने सच को रख रहीं हैं।इस नाटक में ममता जो कि रुक्मिणी की पुत्री है सबसे सशक्त पात्र हैं।

वह अपनी बात को प्रमाण के तौर पर कहती है और नेताओं की तरह झूठ बोलना पसंद नहीं करती और न मीडिया की तरह इधर-उधर की बातें करती है, न खबरों को झूठे तौर पर पेश करती है। वह समाज में लोगों को आइना दिखाना चाहती है। जिम्मी तथा सबको सही रास्ता दिखा कर वह समाज के सच को सबके सामने रखना चाहती है। मीडिया जीवन की सच्चाई आंखों पर रखते हुए जो जिमी को सही जवाब दे देती है। एक स्त्री जो किसी बात को बड़ी बेबाकी से कहती है तो उसमें सच्चाई के साथ प्रामाणिकता भी होती है। वह अपना तर्क पेश करती है, वह सुनी सुनाई बातों पर कम विश्वास करती है तथा अपने निजी जीवन के अनुभवों को व्यक्त करती है। इन सब बातों के संदर्भ में लक्ष्मीनारायण मिश्र अपने नाटक सिंदूर की होली में स्त्री पात्र मनोरमा के माध्यम से कहते हैं कि- "अच्छा तो उसका मूल्य केवल दस हजार। मैने ही उसे उस दिन अमूल्य समझ लिया इसलिए निष्प्रयोजन चित्र बनाने लगी, केवल अपनी कला की परीक्षा के लिए। कला के अमूल्य के लिए संसार में जगह नहीं तो अभी इसे क्या करूं?[27]

ममता मीडिया के सामने अपने पारिवारिक जीवन की विसंगतियों को रखती है। वह अपने मन की बातों को स्पष्ट रूप से बताना चाहती है कि एक स्त्री परिवार में रहकर कैसे-कैसे दंश झेलती है। किस तरह के हालातों से गुजर कर वह अपने जीवन को जीती है। इसके साथ ही साथ वह बताती है कि स्त्रियों को अपने जीवन की और कई समस्याएं होती हैं जिसे वे छुपाते हुए भी नहीं छुपा पाती हैं। इन सब की तह में जाना हर

पुरुष के लिए एक आश्चर्य भरा विवरण होगा। आज स्त्रियों को अधिकार देने की बात होती है मगर उनके मुद्दों तथा उनकी समस्याओं को सही तौर पर कौन पेश करता है। यहां तक कि यह नामित हुए पत्रकार या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी उनकी समस्याओं को सरकार तक कितना पहुंचाती है? यह सब जानते हैं। जिमी को जवाब देते हुए ममता कहती हैं कि- "देखिए, आप मेरे डैड जैसे कंट्रोवर्शियल आदमी को लेकर एक लंबा-चौड़ा इंटरव्यू ले रहे हैं और जाहिर है कि उनकी निजी रुचियों से लेकर उनके घर की अंदरूनी बातों तक में आपकी रुचि ही नहीं , घोर रुचि है। गली-मोहल्ले की बुढियों की तरह खोद-खोद कर आपने सब तरह से आपने उनके बारे में तथ्य इकट्ठा भी किए हैं तो क्या यह सब एक तरह के नजरिए को नहीं दिखाता? आप झूठ कहते हैं कि आप तटस्थ हैं।" [28]

स्त्री जब किसी के जीवन का मूल्यांकन करती है तो वह जीवन की संपूर्ण सच्चाइयों को जान लेना चाहती है। ममता का भी अंदाज कुछ इसी तरह का है। वह मीडिया जीवन की सच्चाई को जानते हुए कहती है कि मीडिया खबरों को जानते हुए भी अपनी सच्चाई पर कितना तटस्थ रहती है। आज राजनीतिक लोगों के साथ मिलकर तथा पैसों के लालच में खबरों को जो सच भी हो तो भी झूठ बना दिया जाता है। कम को अधिक दिखाकर तथा अधिक को कम दिखाकर जनता को गुमराह किया जाता है। मृणाल पांडे ने ममता के माध्यम से स्त्री जीवन की सच्चाई एवं पत्रकारिता जीवन के अनुभवों को व्यक्त करने की कोशिश की है। स्त्री का जीवन

सच्चाई को जानने के बाद कितना कुंठित होता है, वह मन ही मन कितना सोचती है तथा अपने मन के भावों को दूसरों के सामने इस प्रकार रखती हैं वह स्त्री ही जानती हैं। इस संदर्भ में मोहन राकेश आषाढ़ का दिन नाटक में मल्लिका के दुःख बढ़ाने के लिए विलोम व्यंग्य बाण छोड़ता है तो मल्लिका कहती है कि- "पत्थर पहले भी मूल्यवान थे। आर्य विलोम यह बात और है कि पहले उसका मूल्य किसी ने नहीं समझा।"[29]

आदमी जो मछुआरा नहीं था सभी दृष्टियों से एक सफल नाटक है। इस नाटक के केंद्र में रुक्मिणी और उसका पति तथा ममता हैं। आदमी जो मछुआरा नहीं था इसका मतलब है कि रुक्मणी का पति अपने जीवन के कार्यों को करते हुए भी अपने अनुभव को नहीं जान पा रहा था। इस नाटक में बूढ़ा कहता है कि अब तक वह आदमी जो पहले मछुआरा नहीं था मछुआ बन चुका था, जाल फेंक कर इसके साथ ही साथ वह आगे कहता है कि-

"उसने अपना आकार बढ़ाया मुस्कान के साथ
वह मुस्काती गई, बढ़ती गई,
एक लपट की तरह खतरनाक होती गई,
वह आदमी जो मछुआरा नहीं था, यह देखकर
डर से काठ हुआ,
काठ से कोयला,
कोयले से राख,
और रानी के सर का ताज जगमग करता रहा।"[30]

नाटक का पूरा प्रश्न स्पष्ट हो जाता है दद्दा जी के भाव के माध्यम से। मछुआरे की घरवाली मछुआरे की बीवी नहीं थी, उसे पड़ी मिली एक चमकदार मछली कहीं रेत पर। वह आदमी जो मछुआरा नहीं था करता भी क्या अर्थात रुक्मिणी उसकी बीवी थी और सीधी-साधी एवं परंपराओं में बंधी रहने वाली थी तथा उसका पति ईमानदार था। बेईमानी लूट-खसूट से दूर रहता था फिर भी उसको इस क्षेत्र में उकसाने की कोशिश की गई लेकिन वह सच्चाईयों की राह पर चलता रहा अर्थात वह मछुआरा नहीं था, उसने मछली को फेंक दिया समुंदर में और बदले में पाए तीन वरदान उस मछली से जो सच में मछली नहीं समुंदर की रानी थी। नाटक की नायिका रुक्मिणी ही उस परिवार रूपी समुद्र की रानी थी जो परिवार को सभी विसंगतियों से बचाए रखती थी। पारिवारिक मूल्यों तथा स्वेच्छाचारिता से दूर हटकर सबको एक साथ लेकर चल रही थी। समाज में अपनी एक पहचान बनाने के लिए सबके प्रति सेवा-भाव रखती थी।

इस नाटक में लेखिका मृणाल पांडे ने देसी शब्दावलीयों के साथ अंग्रेजी शब्दावलीयों का भी प्रयोग किया है। कहीं-कहीं नये अन्दाज, कहीं खड़ीबोली के शब्दों का प्रयोग जिससे नाटक की सभी विशेषताएं स्पष्ट हो जाती हैं ।जैसे अंग्रेजी शब्दों में डेड, कंट्रोवर्सी, इंटरव्यू, क्रिएटिव, हेलो आदि। भाषा विचारों को व्यक्त करती हुई इस नाटक में भाषा-भाव का एक पूरा का पूरा चित्र खींचती है। जिसके माध्यम से नाटक का मूल्य बढ़ जाता है। देसी शब्दों में जैसे- ठंडाई, पुरवइया, धीमे-धीमे आदि। भाषा के माध्यम से स्त्री

जीवन के मनोभावों तथा स्त्री जीवन की समस्याओं को अंकित करने का प्रयास किया गया है।

काजर की कोठरी नाटक में स्त्री-विमर्श-

कुल चौदह दृश्यों में लिखा गया यह नाटक स्त्री जीवन के मुद्दों का व्यौरा देता है साथ ही निम्न एवं उच्च वर्ग की मनोवृत्तियों को उजागर करता है। स्त्री संवेदना एवं पात्रों की संवाद योजना नाटक में बिल्कुल सटीक एवं स्पष्ट है। जिसे पढ़कर लगता है कि यदि इस नाटक को नवजीवन का नवीन प्रयोग कहा जाए तो सार्थक प्रतीत होगा। नाटक में नेपथ्य से यह पता चलता है कि अभी संध्या होने में दो घंटे की देर है मगर सूर्य अदृश्य है क्योंकि आकाश में केवल काली घटाएं ही दिखाई दे रही हैं। प्रारंभ में ही दरभंगा से सीधे वाजितपुर जाने वाले मार्ग का चित्रण है।

नाटक में तवायफ़ों के शोषित जीवन का चित्रण मिलता है। जीवन में दूसरों के सामने अपमानित, घृणित एवं बाजारु महसूस की जाने वाली तवायफे जीवन में कितना सुख,शांति महसूस करती हैं यह देखने योग्य है। आज भी समाज में तवायफों का जीवन जीना कितना दूभर हो गया है। तन से लेकर मन तक की आजादी क्या उनके पास है ? यह एक बड़ा सवाल है। इस संदर्भ में नासिरा शर्मा कहती हैं कि -"औरतें और अनुराग स्त्रियां और कोमलता, महिलाएं और मर्यादा ऐसे शब्द हैं जिसमें निष्ठा, आस्था, अंधविश्वास की जगह तो है मगर समझ-तर्क कानून का

स्थान नहीं है। मर्द समाज ने औरतों से जवाब सुनना कभी पसंद नहीं किया और न ही उनकी समझदारी को आदर की दृष्टि से देखा।"[31]

स्त्री प्रारंभ से ही शोषण का शिकार रही है लेकिन यदि कहीं वह दूसरे के सानिध्य में (जहां उसका अधिकार न हो) तब वह कैसे जीती होगी। आज भी कई प्रदेशों में लड़कियां खरीदी और बेची जाती हैं और बाद में उन्हे ले जाकर बड़े-बड़े चकलों में धकेल दिया जाता है जहां वे वेश्या बन कर रह जाती हैं फिर उनका जीवन केवल वहीं तक सीमित रह जाता है। धनी-मानी वर्ग पैसे लुटाकर उन पर अपना अधिकार रखना चाहता है। छोटे से लेकर बड़े वर्ग की नजरों में इन स्त्रियों के क्या-क्या हस्र होते हैं यह बिल्कुल अकल्पनीय है।

संवाद-योजना की दृष्टि से यह नाटक सफल तो है ही साथ ही साथ ही स्त्री जीवन की गतिविधियों का मूल्यांकन नाटक में स्त्री-विमर्श की पड़ताल करता है। नाटकों में तवायफों का दर्द स्त्री जीवन की अनुभूतियों को दर्शाता है। रोज घुटन की जिंदगी जीने वाली यह तवायफे सरकार, राजनीतिक तंत्रों एवं समाज से न्याय की कितनी अपेक्षा करें? जिनके जीवन में रिश्ते-नाते केवल एक पैमाना बन कर रह जाते हैं, उन्हें पैसों के दम पर खरीद कर उनके जीवन को बर्बाद करना जैसे एक परम्परा बन गई हो। अपने घर-परिवार से निकाली गई, भगाई गयी, शोषित स्त्रियां कैसी जीवन की प्रतिक्रिया कैसे व्यक्त करें यह एक बड़ा सवाल है? तवायफ दो की दर्द भरी कराह स्त्री जीवन की पीड़ा को व्यक्त करती है। फिर तो स्त्री के पास

हत्या के अलावा कोई विकल्प ही नहीं बचता। स्त्री अपने दर्दों को कितना छुपाए, कितना अनदेखा करें ? कोई उसे सुनकर अनजान बनता है तो कोई उसे देखना नहीं चाहता। तवायफ दो कहती है- "आय हाय! कुफ्र इनकी खानदानियत पे। लोग हमें बदनाम करते हैं। पर इन्हें देखिए खानदानी इंसान होके भी दोस्तों की सगी चचेरी बहन के नसीब फोड़ते इन्हें शोक नहीं, ना ही शरम। इनकी पहली बीबी की तो सगी मौसेरी बहन होती थी, पर ये ठहरे खानदानी उठाईगीर।"[32]

इस नाटक में पुरुष पात्रों में ठाकुर लाल सिंह, कल्याण सिंह, सूरज सिंह, जो (कल्याण सिंह के मित्र हैं) रामसिंह, (सूरज सिंह का पुत्र), हरिनंदन (कल्याण सिंह का पुत्र) पारसनाथ, धरणीधर, राजाजी, दौलत सिंह, हरिहर सिंह (पारसनाथ के मित्र) लोकनाथ जो पत्र वाहक है। इसके अलावा सिपाही भृत्यगण तथा साजिंदे, मिरासी आदि हैं। स्त्री-पात्रों की संख्या पुरुष-पात्रों की अपेक्षा कम है जिसमें चार तवायफ बादी तवायफ, बादी की मां (रसूलाबादी), कुटनी आदि का चित्रण है। स्त्रीवादी पात्र अर्थात स्त्रियों ने पुरुषवादी सोच का हवाला दिया हैं, खासकर रईसों की आदतों एवं घटिया जिंदगी का वर्णन अपने शब्दों में करती हैं। जैसे तवायफ एक कहती है कि- "अरे चील की निगाह चाहे चूक जाए, पर मीरासियों की नजर में चूक (हंसकर) कैसे होगी। हां हां यही थे वे, रईसों के भड़वे लाल सिंह के नालायक भतीजों के लंगोटिया यार, बेईमानों के सरताज।"[33]

अर्थात पुरुष सदा स्त्री को भोग्या समझता आया है। वह स्त्री का शोषण तो करता ही है साथ ही साथ दुर्व्यवहार भी करता है। सदैव संशय में डालकर गुमराह करता रहता है। बदलते दौर में स्त्री सशक्त होना चाहती है। पुरुष की सहानुभूति से अलग होकर आत्मसम्मान के लिए स्वयं निर्भर होना चाहती है। आर्थिक तंगी के कारण स्त्रियां सदैव इस समाज का हिस्सा रहीं। जब शुरू से ही स्त्री- पुरुष बराबर थे तो फिर यह विमर्श क्यों। अर्थात यह आर्थिक निर्भरता ही स्त्री को पुरुष का गुलाम बनाए रखा। रंजन तिवारी ने 'जहर' नाटक का उल्लेख करते हुए लिखते है जिसमे श्यामाचरण नामक पात्र कहता है कि -"औरत तुम्हारे लिए खिलौना है,,,,,,। पुरुष इस पृथ्वी को भोगने के लिए पैदा होता है। धन, स्त्री एवं ऐश्वर्य उसका जन्म सिद्ध अधिकार है। स्त्रियों के संबंध में जो हीन भावना गुप्त काल से मिलती है, वह आज भी अपवाद नहीं है।"[34]

समकालीन दौर में नारी संबंधी छायावादी रूमानी दृष्टिकोण का लोप हो चुका है। इस संबंध में अन्य संबंधों की भांति एक नई यथार्थवादी दृष्टि उभरकर आई है। नारी यहां पूजा की वस्तु नहीं। कुछ नाटकों को छोड़कर जिनमें भावुकता तथा मिथ्या का आवरण डालकर नारी को ईश्वरीय महामाया, देवी आदि बताया गया है फिर भी नारी होने की तथा लिंग विषमता को झेलती हुई स्त्री स्त्री इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिए अपने नवीन जीवन एवं अस्मिता के लिए तत्पर रही है। घर और समाज में नारी की स्थिति का जिक्र करते हुए स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों की दृष्टि

प्रायः अर्थ से प्रभावित नारी संबंधों की ओर गई है। सामान्य कामकाजी, आर्थिक दृष्टि से कमजोर स्त्रियों के जीवन की विवशता, पुरुष प्रधान समाज में उनके स्थिति की विडंबना, नया आर्थिक व्यक्तित्व ग्रहण करके, दोहरा दायित्व बोझ किंतु एक समानपूर्ण व्यक्तित्व की तलाश नाटकों में नारी चित्रण की दृष्टि में महत्वपूर्ण जान पड़ता है।

इस नाटक में तवायफों का जीवन दूसरे की कृपा पर आधारित है। उन्हें खाने-पीने के पैसे तो मिलते हैं लेकिन सम्मान नहीं, उन्हें पैरों की जूती की तरह इस्तेमाल किया जाता है। नारी-विमर्श ऐसे मुद्दों को संजोता है, जहां स्त्री अस्तित्व के लिए लड़ रही हो। इस संदर्भ में धूमिल कहते हैं कि-

मुझे पता है,
स्त्री देह के अंधेरे में,
बिस्तर की अराजकता है।
स्त्री पूँजी है ,
बीड़ी से लेकर बिस्तर तक,
विज्ञापन में फैली हुई। (सुदामा पाण्डे "धूमिल")

इस तरह का अनुभव 'तीन दिन तीन घर' नाटक की कमला का भी है। वह मानती है कि- "घर चाहे छोटे हो या बड़े हो औरत हर जगह औरत ही है। उसे पशु की तरह जहाँ भी खूंटे में बांध दो बधी रहेगी। वह बेजुबान है, उसका पति भी उसे मारता-पीटता है तथा घृणा करता है। इस प्रकार सामान्य स्त्रियों की जीवन दशा और उनके प्रति धारणा में कोई विशेष अंतर नहीं आया है, अंतर आया है तो बस इतना कि अब स्त्री अपनी इस

स्थिति को स्वीकार करने को तैयार नहीं। वह विद्रोह के लिए उद्धत हो गई है।"[35]

नाटक की कथावस्तु पात्र हरिनंदन और सरला के आस-पास घूमती है। हरनंदन 'काजल की कोठरी' नामक नाटक का सबसे अधिक जीवंत और महत्वपूर्ण पात्र हैं। वह बादी तवायफ के माध्यम से अपनी होने वाली पत्नी सरला का पता लगाता है। हरनंदन के माध्यम से नाटककार ने व्यक्ति की दोहरी जिंदगी जीने के अंतर्विरोधों को उभारने का प्रयास किया है। सरला के पिता का नाम लाल सिंह था, मरने के पहले उन्होंने अपनी संपत्ति सरला के नाम किया था। उनका कहना था कि मैं लाल सिंह अपनी बीस हजार रुपए की जायदाद अपनी बेटी सरला के नाम करता हूं। इस जायदाद पर सिवा मेरी बेटी के किसी का हक न होगा। बशर्ते कि चार शर्तों का पूरा बर्ताव किया जाए- (१) सरला को अपनी कुल जायदाद का मनीजर अपने पति हरनंदन को बनाना होगा। (२) सरला अपने पति के मर्जी बगैर उसे न किसी को दे सकेगी और न ही उसमें से कुछ खर्चा कर सकेगी। (३) सरला के पति को जायदाद पर बतौर मनेजरी के हक होगा न कि बतौर मालिकाना। वो चाहे तो मने जरी बतौर 500 रुपये महीना उसकी आमदनी में से ले। (४) सरला की शादी मैंने कल्याण सिंह के बेटे हरनंदन से तय कर दी है। अगर मेरे रहते हो गई तो ठीक वरना मेरे न रहने पर भी सरला के लिए लाजमी होगा कि उसी से शादी करे। अगर मेरी मर्जी के खिलाफ वह किसी गैर से शादी करेगी तो मेरी कुल जायदाद के आधे हिस्से के

वारिस मेरे चारों भतीजे पारसनाथ, राजाजी, धरणीधर और दौलत सिंह होंगे-बाकी आधा सरला के पति का होगा।

पारसनाथ अपने चाचा लालसिंह की वसीयत के अनुसार सरला का अपहरण करवा कर उनकी पूरी संपत्ति अपने नाम करवाना चाहता था। वह अपने चाचा से छल-कपट करता है। मृणाल पांडे ने यहां पर रिश्तो की अहमियत को रेखांकित किया है कि हमारे समाज में बहुत ऐसे लोग हैं जो पैसे और संपत्ति के लिए कुछ भी कर सकते हैं। अपने सगे भाई-बहन को भी मौत के घाट उतार सकते हैं। रिश्ते भी आज कपड़े बदलने वाले हो चुके हैं। रिश्तों के पीछे स्वार्थपन छिपा हुआ है। अंत में पारसनाथ इसमें कामयाब भी नहीं हो पाता है। सरला को बचाने के लिए वादी तवायफ सामने आती है। वह उसकी रक्षा करती है, उसकी ढाल बन जाती है। वादी पारसनाथ से सूचनाएं लेकर हरनंदन को बताती है और हरनंदन सरला को बचाने का प्रयास करता है। नाटक में वादी तवायफ स्त्री की मर्यादा की रक्षा करती है। आज हमारे देश में कई लोग ऐसे हैं जो स्त्रियों को खरीदते, बेचते हैं। स्त्रियों का बाजारीकरण हो रहा है। इन सभी शोषण को मृणाल पांडे ने नाटक में चित्रित करने का प्रयास किया है। एक स्त्री, स्त्री की मनोदशा को समझ सकती है। यही कारण है कि नाटक में वादी तवायफ सरला को बचाने का प्रयास करती है। सरला का जीवन भले ही विसंगतियों से जूझ रहा था मगर वादी तवायफ सरला की अस्मिता को बचा लेती है। स्त्री-विमर्श की दृष्टि से वादी तवायफ जैसे कई महिलाएं आज भी समाज में

स्त्रियों की सुरक्षा, उनके रोजगार, शिक्षा तथा देखरेख के लिए काम कर रही हैं। महिलाओं के संगठन में बहुत सी महिलाएं आज भी निःस्वार्थ अपना योगदान दे रही हैं। युगीन चेतना की परिचायक वादी तवायफ सरला की जिंदगी को शोषण, हिंसा और धोखेबाजी से बचाती है वरना वह कहीं की न होती। समाज में पारसनाथ जैसे भेड़िये मुंह फाड़ कर घूम रहे हैं। अपने स्वार्थ एवं निजीपन के लिए किसी को भी निशाना बना सकते हैं। यह विषय भी इस नाटक की पोल खोलता है।

नाटक में मृणाल पांडे ने तवायफ के माध्यम से सरला की जिंदगी के साथ जुल्म करने वाले और अवसर का लाभ उठाने वाले घुड़सवार हरिहर बाबू की मक्कारी, फरेब और क्रूरता को दिखाया है। यहां समाज में रहने वाले ऐसे पुरुषों का वर्णन किया गया है जो अपने फायदे के लिए दूसरों की जोरू और संपत्ति का लाभ उठाना चाहते हैं। रिश्तों को तार-तार करने वाले लोग समाज का क्या भला करेंगे? समाज की स्त्रियां इन मक्कारों से अपने आप को कैसे सुरक्षित महसूस करेगीं? तवायफ एक कहती है कि- "अरे इसकी न पूछो मरदद की एक आंख है उस अभागी सरला पर और दूजी लगी है लाल सिंह की बेशुमार दौलत पर। इसी ने उन चार भाइयों को पट्टी पढ़ाई है कि सरला को ऐन शादी के रोज तिडी करके कैद कर लिया जाए और किसी तरह से झांसा देकर इससे ब्याह किया जाए। तब हरनंदन से शादी न होने के सबब से आधी दौलत वसीयत के हिसाब से उन चारों भाइयों को मिल जाएगी, आधी इसे, बतौर सरला के पति होने के।"[36]

लेखिका ने इस अनुदित नाटक में स्त्रियों के प्रति उच्च वर्ग की मनोस्थिति का वर्णन किया है। भले ही उच्च वर्ग के लोग स्त्री की सुरक्षा, शिक्षा का स्वांग रचते हैं मगर इसके पीछे उनका कुछ अलग ही पैमाना बना होता है। उच्च वर्ग की भलमनसाहत को सीधे-सीधे कहने की कोशिश लेखिका ने तवायफों के माध्यम से किया है जो आज भी लागू होती है। तवायफ एक कहती है कि- "बेटियों तुमने अभी रईसों की स्वांगभरी दुनिया दूर से ही देखी है- इसके अंदरूनी हालात नहीं जानती। वे रईस लोग जो है न, वे अपनी दौलत में तैरते-तैरते थक जाते है और जिंदा रहने को सर ऊंचा रखना चाहते है। पर दौलत है की घटती नहीं। नाक की तरह चढ़ती है। तब कोफ्त से ये लोग उसे चेहरे के आगे से हटाने को हाथ मारते है, और उस वक्त जो छीटे उछल जाते हैं उनमें हमारी-तुम्हारी जैसे दस-बीस पला करती हैं। तो तेल देखो और तेल की धार देखो।"[37]

समाज में हरनंदन जैसे पात्र भी बहुत हैं जो प्रेम और शादी को बड़े सरल ढंग से निर्वहन करना चाहते हैं। हरनंदन की शादी सरला से तय हैं मगर वह वादी तवायफ के साथ रहना चाहता है। वह अपनी ठकुरैती का वचन पूरा करना चाहता है। यहां एक ओर समाज में वेश्याओं का उपहास होता है वहीं दूसरी ओर एक धनी-मानी वर्ग उन पर रुपए लुटाता है। शोषण और मक्कारी के परिवेश में स्त्रियों को कितना भी पैसा, सुख-शांति दे दी जाए मगर क्या वे इसका लाभ उठा पाएगीं। हरनंदन इन तवायफों की सारी चापलूसी भी समझता है फिर भी अपने शान और सम्मान के लिए दूसरी

स्त्री सरला को नीचा दिखाना चाहता है। इस संदर्भ में महादेवी वर्मा कहती हैं कि- "पुरुष के द्वारा नारी का चरित्र अधिक आदर्श बन सकता है परंतु अधिक सत्य नहीं, विकृति के अधिक निकट पहुंच सकता है परंतु यथार्थ के अधिक समीप नहीं। पुरुष के लिए नारीत्व कल्पना है परंतु नारी के लिए अनुभव। अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र वह दे सकेगी वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरांत भी शायद ही कहीं दे सके।"[38]

लेखिका ने नाटक में तवायफों की उबान भरी जिंदगी का जिक्र किया है। तवायफो की उबान भरी जिंदगी को रइसों का सहारा मिल तो जाता है, वे खुशी भी होती है लेकिन यह खुशी स्थाई नहीं होती एक समय बाद वह क्या कर बैठेंगे इसका भरोसा नहीं। पात्र अम्मा का कथन है कि- "ऐ हुजूर मैं भला क्या बताऊं? आप से कौन बात छिपी हुई है? घर में दस आदमी खाने वाले ठहरे, तिस पर महंगी के मारे नाकों दम हो रहा है। हाथ का फुटकर खर्च ही दिन-रात अलग ही परेशान किए रहता है। अभी कल को ही लीजिए छोटे नवाब साहब इसे दो सौ रुपये महीना देने को राजी थे, मगर नाच- मुजरा बंद करने को कहते थे, मैंने मंजूर न किया क्योंकि घर की आमदनी तो उन्ही से होती है। जब भी मुश्किल से चलता है। खाली दो सौ रुपए से भला क्या हो सकता है?"[39]

नाटक में सरला पारसनाथ से हकीकत जानना चाहती है कि मुझे इस स्थिति में किसने पहुंचाया मगर पारसनाथ उसे गुमराह करता है, सही जवाब नहीं देता। नारी पुरुष-भेद को कितना समझ पाती है? और जब

समझ जाती है तो वह कभी माफ़ नहीं करती। सरला पारसनाथ से कहती है- "मैं तो अभी तक यहीं समझे थे कि तुम्हीं ने मुझे इस दशा में पहुंचाया, क्योंकि तुम्हीं शादी वाले रोज मुझे बुला के चोर दरवाजे से ले गए थे जहां से वे बदमाश मुझे उठा ले आए।"[40]

मगर सरला पारसनाथ की प्रति कभी द्वेष नहीं रखती थी, उसे अच्छा आदमी समझती थी परंतु पारसनाथ ने सरला के प्रति जो किया वह अत्यंत गलत था। सरला एक इमानदार साहसी स्त्री थी। दूसरे को कभी गलत नहीं कहती थी। स्त्री जीवन की सच्चाई को बताते हुए नासिर शर्मा इस संदर्भ में कहतीं हैं कि -"औरत अधिक इमानदार, निष्ठावान, कर्मठ, धैर्यवान और बलिदान करने वाली एक ऐसी जीव है जिसका मुकाबला दुनिया का दूसरा प्राणी नहीं कर सकता है।"[41]

सरला दुबारा शादी नहीं करना चाहती थी, इसलिए वह कहती है कि दोबारा शादी का सवाल पैदा ही नहीं होता। सरला अपनी शादी के लिए किसी का बोझ नहीं बनना चाहती। स्वतंत्र रहना चाहती थी। मगर संपत्ति के लालच में पारसनाथ जैसे लोग उसे मूर्ख बनाने में बाज नहीं आते और हरनंदन जैसे लोग अपने वादे से मुकरकर शोषण, दगाबाजी का आईना दिखाते हैं। स्वार्थपन, संपत्तिलोभ एव काइयापन मानव को बर्बाद कर देता है। पारसनाथ, हरनंदन जैसे लोग इसी के शिकार है। सरला भोली लड़की है। अभी वह इन सबके चाल को नहीं समझ पाती है। अंत में उसे पता चलता है कि वे उसका शोषण कर संपत्ति हथियाना चाहते हैं। सरला अपने

विवाह के लिए कभी अपने पिता से नहीं कहा लेकिन उसका पिता हरमंदर से शादी के लिए राजी था। मगर सरला विवाह के लिए अपने पिता को चिंतित नहीं देखना चाहती थी। इस संदर्भ में शिवमूर्ति केशर कस्तूरी में कहते हैं कि कस्तूरी भी अपने पिता से यही कहती थी कि- "मेरी सोच में अपनी देह मत गलाइए, जितने दिन आपकी बारी-फुलवारी में खेलना-खाना बदा था खेले-खाए, अब मेरा हिस्सा मुझे अलगिया मिल गया है। तो जैसा भी है उसे भोगना होगा, खेना होगा। मां-बाप जनम के साथी होते है पापा। करम रेख तो सभी की न्यारी है। जब जनक जैसे बाप जो राजा भी थे और ब्रह्मज्ञानी भी, जिनकी इतनी औकात थी कि सौ बेटी-दामादों को घर-जमाई रखकर उम्र भर खिला सकते थे- तीन लोक के मालिक बेटी व्याहकर भी उम्र भर उसे सुखी देखने को भी तरस गए तो हम गरीब लोगों की क्या औकात।"[42]

'काजर की कोठरी' की तरह औरतों की दुनिया में रहकर उनसे चालवाजी करना कितना कठिन है? नाटक में देखने को मिलता है। रामसिंह हरनंदन को समझाते हुए कहता है कि- "ये औरतों का चक्कर कुछ ऐसा ही है। कहीं ऐसा न हो कि बादी तुम्हे ही अपने काबू में कर ले। देखो भाई उस काजल की कोठरी से तुम पल्ले को कहां तक बचाए रख सकते हो। स्यानों ने कहा तो है-

काजर की कोठरी में कितनों ही सयानो जाय
एक लीक काजर की लागि है पै लागि है।"[43]

मृणाल पांडे ने इस नाटक में भाषा को संवेदना का माध्यम बनाया है। 'काजर की कोठरी' नामक शीर्षक सामाजिक, राजनीति, आर्थिक एवं स्त्री जीवन की संवेदना तथा शिल्प को समस्या के केंद्र में रखता है। भाषा पात्रों की वाकपटुता एवं अनुभव को नाटक में अपने साथ जोड़ती है। सरला की जिंदगी एवं तवायफो के दर्द को बयां करती हुई भाषा मानव मन के स्त्री-संवेदना का भाव-बोध जगाती है साथ ही साथ मनुष्य के जीवन में स्त्रियों के प्रति सहानुभूति का भाव जगाती है।

'चोर निकल के भागा' नाटक में स्त्री-विमर्श-

चोर निकल की भागा 1995 में लिखा गया नाटक है। इस नाटक का मंचन भी हो चुका है। साहित्य में नाटक की विधा मनुष्य के जीवन के प्रत्येक अनुभव को दर्शाता है कि जीवन की अनुभूतियां समाज को किस प्रकार से सीख देती हैं। महिला नाटककारों में मृणाल पांडे का मुख्य स्थान है। नारी जीवन की मनोदशा को मृणाल पांडे ने बड़ी सावधानी से दिखाया है। पुरुष-पात्रों की अपेक्षा स्त्री-पात्रों की अनुभूति को बड़ी सलीके से व्यक्त किया है। मृणाल पांडे की सबसे खास विशेषता यह है कि जब नाटक में पात्रों के वक्तव्य को पढ़ा जाता है तो लगता है कि जैसे पात्र स्वयं बोल रहा हो। पात्रों की मनःस्थिति मन की संवेदनाओं को व्यक्त करती है। पात्र केवल बोलते ही नहीं समाज को एवं नाटक देख रहे श्रोताओं को जीवन जीने की सीख भी देते हैं। नाटक में पात्रों की संवेदना नाटक को रुचिकर बनाती है। मनुष्य के जीवन में चल रहा द्वंद बिल्कुल साफ दिखाई देता

है। प्रत्येक मनुष्य को जीवन के द्वंद्व से गुजरना पड़ता है। मनुष्य के इस भाव को नाटक में दिखाया गया है। चाहे वह स्त्री पात्र हो या पुरुष पात्र।

नाटक के प्रारंभ में साज-सज्जा का जो प्रतिरूप है वह अत्यंत रोमांचित करने वाला है। साथ ही साथ नाटक के आंतरिक भावों को व्यक्त करता है। शुरुआती दौर में सामने एक ढाबा का दृश्य है। जहाँ एक मेज रखी है, कुछ कुर्सियां रखी हैं, उन्ही पर तीन मित्र महेश, सुरेश, रमेश बैठे हैं। ये सभी बौद्धिक बहस में लीन हैं। शांत वातावरण में केवल शब्द ही गुंजायमान है। इस नाटक में स्त्री पात्र नीता स्त्रियों के जीवन की समस्याओं को चिन्हित करती है तथा उन पर कई सवाल खड़े करती है। नीता कहती हे कि इन शोषित लोगों की जो शोषित औरतें हैं उनके बारे में क्या राय हैं आपकी? उनकी जगह कहां है, वाम,दक्षिण या हाशिए पर। मृणाल पांडे ने नीता के माध्यम से स्त्री जीवन की विसंगतियों को उजागर करने का प्रयास किया है। आज हमारे समाज में स्त्रियाँ किन-किन मुद्दों से जूझ रही हैं? इसका अंकन नाटक में किया गया है।

नाटक में पात्रों की संख्या अधिक है, खासकर पुरुष पात्रों की। पुरुष पात्रों में महेश, रमेश, सुरेश, रामअवतार, बाबाजी, मास्टर गेंदालाल, टी.वी.उद्घोषक, अधिकारी, कर्मचारी, बब्बरभाई साहब, टीटो-पीटो, जोकर इसके अलावा स्त्री-पत्रों की संख्या कम है। स्त्री-पात्रों में शरीफा और नीता है। नीता के वक्तव्य नाटक में बीच-बीच में सुनाई देते हैं। पर शरीफा बहुत सशक्त स्त्री-पात्र है। वह गेंदालाल की पत्नी है। अपनी विचारों के माध्यम

से किसी भी विषय पर बड़ी समझदारी से निर्णय लेती है। स्त्री होने के नाते पुरुषवादी मानसिकता का बीच-बीच में खंडन करती है। गेंदालाल के विचारों को सही बताने का निर्णय वही करती है। शरीफा गेंदालाल के हाजिर जबाबी का टक्कर भी देती है। किसी भी बात को बड़ी आसानी से नहीं मान लेती। लेखिका ने इस नाटक में राजनीतिक अधिकारियों की क्षुद्र मानसिकता को दिखाया है। लेखिका ने ताजमहल की चोरी के माध्यम से आज के समय में राजनीतिक क्षेत्र में होने वाले अत्याचार का पर्दाफास किया है। समाचार पत्रों में प्रसिद्ध स्थापत्य कला की निशानी ताजमहल की चोरी को लेकर खबर आ रही है। उसको लेकर संसद में नेताओं के बीच विवाद बढ़ता है। नेता हमेशा अपनी कुर्सी बरकरार रखना चाहते हैं इसलिए ताजमहल की चोरी से ज्यादा चिंतित नहीं है बल्कि अपने चुनाव को लेकर ज्यादा चिंतित हैं। भारतीय संस्कृति में प्रेम का प्रतीक ताजमहल और कला, संस्कृति का परिचायक इस स्तूप की चिंता ही नहीं है। बड़े-बड़े राजनीतिक लोग अपने चुनाव में व्यस्त है। चुनाव जीतने के बाद फिर वही शोषण, चापलूसी शुरू कर देते हैं। ये सदियों से नहीं बल्कि आज के समय में यह विसंगति है। हमारे देश में अच्छे अफसरों की कमी है।कितना भी इमानदार व्यक्ति हो कुर्सी पाने के बाद वो भी उसी ढर्रे पर चलना शुरू कर देता है। नेता ताज की सुरक्षा को लेकर मात्र चर्चा करतें है। इस नाटक में यह भी देखने को मिलता है कि सत्ताधारी लोगों के इशारे पर कर्मचारी भी उन के अनुसार कार्य करते हैं। हमारे सामाजिक मूल्य, दूसरे पर विश्वास, किस तरह खत्म

हो रहे हैं। इस नाटक में भली-भाँति देखा जा सकता है। राजनीति में केवल नेता को लाभ होता है जनता तो पिसती है। जनता के लाभ-हानि बराबर के होते हैं। इस बात को स्वीकार करते हुए इस संदर्भ में धर्मवीर भारती अंधा युग में कहते हैं कि-

"कोई विक्षिप्त हुआ
कोई शाप ग्रस्त हुआ,
हम जैसे पहले थे,
वैसे ही अब भी हैं
शासक बदले, स्थितियाँ बिल्कुल
वैसी हैं, इससे तो पहले के
ही शायद अच्छे थे, अंधे थे।"[44]

नाटक में संवाद-योजना पात्रों के अनुरुप है। काल्पनिकता के वजाए यथार्थ की स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास लेखिका मृणाल पाण्डे ने किया है। नाटक के दृश्य दो में गेंदालाल और शरीफा के बीच बातचीत का दौर चलता है। गेंदालाल कहते हैं शरीफा देखो जरा कौन आया हैगा ससुरा इस टैम? मगर शरीफा आगे गेंदालाल के इन बातों का तबाक से जवाब देती है। इस समय कुछ खाने को बना रही है इसलिए वह भी जाना नहीं चाहती। गेंदालाल की समस्त बातों को ऐसे ही स्वीकार नहीं करती। वह गेंदालाल की पत्नी जरूर है मगर अपने सामने गेंदालाल को कुछ नहीं समझती। शरीफा कहती है- "तुम्हारे पैरों में क्या मेहंदी लगी है मास्टर? जरा उठ के

खुद क्यों नहीं झांक लेते? मैंने यह मुई पतली छोड़ी नहीं कि तमाम सालन जल जाएगा- यूं ही छीछड़े दिए हैं कमबख्त कलुए ने।"[45]

बीच-बीच में मास्टर गेंदालाल और पत्नी शरीफा की तुकबंदी देखने को मिलती है। दोनों पात्र तुकबंदी लगाने में माहिर है। जैसे शरीफा कहती है कि- देखोजी, देखोजी किस्मत के खेल, छछूंदर के सर पे चमेली का तेल, के राम जी खा गए सबरी के बेर, औ अंधों के हाथ में लग गई बटेर। शरीफा के किसी भी बात को बड़े सलीके से उत्तर गेंदा लाल देते हैं। शरीफा भी बातों में हा में हा मिलाता रहता है। स्त्री पात्र शरीफा समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, शोषण आदि को बहुत अच्छे से समझ रही है। वह अपनी बातों के माध्यम से बीच-बीच में इन सब बातों का जिक्र करती रहती है। रमेश, सुरेश, महेश, नीता इन पात्रों को एक बाबाजी मिले थे जिन्होंने एक भभूत दिया था और कहा था कि जाकर मास्टर गेंदालाल से मिलो, आगे का रास्ता वही बताएगा। ये चारों पात्र चोरी का प्लान बनाते हैं और मास्टर ने गेंदालाल ताजमहल की चोरी करने की तरकीब बताता है। उनके साथ हामी भरता है और अपनी बड़ाई करता है। मगर पत्नी शरीफा इससे ज्यादा संतुष्ट नहीं वह इन बातों का खंडन करती है। मास्टर गेंदालाल होशियार जरूर है मगर ताजमहल की चोरी नहीं कर सकता है। चोरी करने वाले पकड़े जरूर जाएंगे। पत्नी शरीफा चोरी के मसले में कहती है कि चोरी करने का भी एक तरीका होना चाहिए। वह कहती है कि पहले उस किस्म के हालात पैदा कर दिए जाएं की चोरी की बात मालूम होते भी कोई शक न

करे। चोरी के पहले खरीद का विज्ञापन निकालकर चोरी की जाय तो ज्यादा अच्छा होगा।

नाटक में गेंदालाल की पत्नी शरीफा की संतान और संपत्ति का जाने से जीवन दुख से भरा है। इन चीजों के जाने के बाद अत्यंत निराश है। अपने जीवन की घटना का जिक्र करते हुए कहती है कि उधर हमारी बच्ची का खोना, हमारे दिलों और हमारी नाटक कंपनी का टूटना और इधर गुरु महाराज से नाता छूटना, फिर शुरू हुआ ये आलम मुफलिसी का। इसके साथ ही साथ मां-बाप की ज्यायदाद हम दोनों के नाम थी पर अफ़सोस कि भाई ने हेरा-फेरी करके हड़प लीऔर मेरी पार्ट टाइम नौकरियां भी। सबसे अधिक शरीफा को अपने रोजगार की भी चिंता है। जीवन चलाने के लिए उसे पैसों की जरूरत है। आज हमारे समाज में जो स्त्रियाँ आर्थिक रूप से कमजोर है नौकरी करने के बाद या काम करने के बाद तथा मजदूरी करने के बेस्ड कुछ पैसे इकट्ठा कर पाती हैं और उसी के आधार पर अपने परिवार का पालन-पोषण करती है इसका जिक्र नाटक में मिलता है। आज समाज में कितना भ्रष्टाचार व्याप्त हो गया है। गेंदालाल कहता है कि एक भभूत डालने से आप सभी आराम से चोरी कर सकते है, आपको कोई नहीं पकड़ पायेगा लेकिन शरीफा जानती है कि चोरी इतनी आसानी से नहीं की जा सकती, एक न एक दिन चोर पकड़ा जाएगा और इसका राज खुल जाएगा। शरीफा अंग्रेजी सभ्यता, अंग्रेजी लोगों के रहन-सहन, भाषा-संस्कृति के खिलाफ है। वह भारती सभ्यता में ज्यादा विश्वास करती और सबको सीख

भी देती है कि हमें भारतीय संस्कृति स्वीकार करना चाहिए। दुनिया के छल-छद्म से दूर रहना चाहिए। शरीफा कहती है- "ऐ बेटा, गलती तुम्हारी नहीं, इस बेदर्द जमाने है। इस्कूलों में बजाए मादरी जुबान में उर्दू-हिंदी सिखाने के तुम्हारे,पे तमाम अगड़म-बगड़म,लंबी-चौड़ी विलायती डिगरियों वाले, तुम्हे लगातार विलायती तालीम का रट्टू तोता बनाते चले गए। अंग्रेजी डिरामा की तालीम दी पे देसी तरीके से न तिलस्मी दाव-पेच सिखाए, न खंजरवाजी।"[46]

आज भी फैशन के दौर में लोग दिखावे पर जोर देते है। वाह्य, आडंबर में ज्यादा विश्वास करते है। वास्तविकता से मनुष्य कटता जा रहा है। पैसे के कीमत में रिश्ते भूलते जा रहे है। शरीफा इन सब बातों का जिक्र करती है। लेखिका नाटक में व्याप्त भ्रष्टाचार, शोषण, बाजारीकरण, फैशन-परस्ती एवं राजनीतिक-कूटनीति दौर का जिक्र किया है।

'चोर निकलकर भागा' नाटक अपने समकालीन भाव-बोध को व्यक्त करने में अत्यंत सफल रहा है। शासक वर्ग की भोग-विलास की प्रवृति, आम जनता की कठिनाइयों, तत्कालीन जनता की स्थिति, क्रूरता, स्वार्थपरता, हिंसा, मक्कारी और स्त्री के अस्तित्व को नाटक में दिखाया गया है। अपने ही समाज में व्याप्त ऐसे गेंदालाल जैसे लोग भ्रष्टाचार, मक्कारी आदि को महत्व देते हैं। उनके कारनामों को भी यह नाटक उजागर करता है। नाटक में गेंदालाल उस सच्चे कलाकार का प्रतीक जो अंधविश्वास एव परंपराओं परंपराओं को जानता है और संघर्ष करता है। गेंदालाल और

उसकी पत्नी के बीच सहज आंतरिक प्रेम है। बीच-बीच में दोनों में टक्कर ज़रूर होती है लेकिन रिश्तो में दरार नहीं आती। बाबा के चरित्र से नाटककार ने धर्म और समाज की विसंगतियों को, राजनीति की हदों की ओर संकेत किया है। साथ ही यह परिस्थितियां और दशा उसके चरित्र को, सोच को नई दिशा देती है। सामाजिकता, राष्ट्र की अभिव्यक्ति को ,अपनी मानसिक स्थिति, बेरोजगारी, भभूत जैसी झूठी मक्कारी तथा उसके जीवन के छलावे को एक व्यक्त करता है। बेरोजगार की स्थिति में शिकार प्रत्येक आदमी जीवन के अंत में चोरी तक करने में उतर आता है। झूठ, दगाबाजी और अंधविश्वास तक का सहारा लेना शुरु कर देता है। जीवन में सफलता न पाने के कारण मनुष्य बेरोजगारी का शिकार हो जाता है। तब वह मानवीय जीवन से कट जाता है। किसी के साथ कुछ भी कर सकता है और किसी का सगा नहीं हो सकता। नाटक में बाबा और गेंदालाल की स्थिति बाद में भी चलकर यही हो जाती है। किसी समाज में रहने वाले बेरोजगारों को ऐसे लोग ठगते रहते हैं, मूर्ख बनाकर पैसा लूटते हैं और अपने जीवन को सुखी बनाना चाहते हैं।

नाटक की सफलता और असफलता भाषा पर आधारित होती हैं। भाषा वह तत्व है जो नाटक को रुपायित करता है, उसी के माध्यम से नाटक का ढांचा खड़ा किया जाता है और उस ढांचे के बीच घटना क्रम के विकास के साथ कथावस्तु का उदघाटन, देश-काल का निर्धारण और चरित्रों की स्थापना होती है। नाटक के क्रियाव्यापार की प्रक्रिया चरित्रों के पारस्परिक

संबंध और उनकी भावनाओं तथा प्रतिक्रियाओं का एहसास भी उस भाषिक संरचना से ही होता है। जो नाटय पाठ का निर्माण करती है। नाटककार उससे एक ओर उसकी ऊपरी संरचना करता है, दूसरी ओर वह आंतरिक संरचना जो भावों, विचारों और मनःस्थितियों को द्योतित करती है। इस प्रकार भाषा नाटक के ढांचे का एहसास कराती है पर साथ उन युक्तियों का भी जो कथानक रूढ़ि नाटकीय विडम्बना, की विडंबना, बिम्ब,प्रतीक, नाट्य ग्रंथियों आदि को भी निर्मित करती है। नाटक के विभिन्न तत्वों का ग्रंथन भी एक तरह से भाषा की ही देन है।"[47]

मृणाल पांडे के नाटकों में सहज जीवन का आभास होता है। उनके नाटकों के संवाद में आदमी के सहज जीवन से संबंध का भावबोध दिखाई देता है। अतः यह कहा जा सकता है कि मृणाल पांडे के नाटकों की भाषा में सर्जनात्मक प्रयोग जरूर हुए हैं, पर भाषा मानव जीवन की प्रत्येक दशा को अपनी आप व्यक्त करती है। जिसे भाषिक परिदृश्य मुखरित एवं बहुमुखी हो गया है। उनकी भाषा पाठ पुस्तकों से निकलकर रंगमंच तक पहुचती है और प्रभावशाली हो जाती है। उनके नाटकों में बिम्ब, प्रतीक विधानयुक्त भाषा विधान का अच्छा संयोजन हुआ है। नाटकों में एकलयता मिलती है। जो नाटक की औपचारिकता और भावात्मक अनुशासन को ही नियंत्रित करती है। वस्तुतः कहा जा सकता हे कि मृणाल पांडे के नाटकों की भाषा में स्वभाव-प्रियता, मधुरता, संयम है इसी कारण से नाटक के तत्व भी अपने आप मुखरित हो रहे हैं।

हमारे देश में व्याप्त बेरोजगारी और अब्यवस्था के कारण शिक्षित नई पीढ़ी को प्रायः अपनी प्रतिभा और योग्यता के उचित प्रयोग करने का अवसर नहीं मिलता है। इसके परिणामस्वरुप स्वयोग्यता के अनुरूप आस्था व सम्मान पाने से वंचित रह जाते हैं। ऐसे में ये प्रतिभा संपन्न लोग अपने आप ही विदेशों में जाकर सामाजिक, आर्थिक स्तर पर अपनी व्यक्तित्व को सुरक्षित रखने का प्रयास करते है। इसके बारे में शशिप्रभा शास्त्री का कथन तर्कसंगत लगता है। वे कहतीं हैं कि- "क्योंकि पूरा देश लूट रहा है इसलिए आज का मनुष्य सही जगह की तलाश में परेशान है। वह अपनी धुरी को नही खोज पा रहा है। ऐसी धूरी जो उसकी प्रतिभा का, कार्यकुशलता और सृजनशक्ति को अंगीकार कर सके।"[48]

'शर्मा जी की मुक्ति कथा' नाटक में स्त्री-विमर्श-

शर्मा जी की मुक्ति कथा हमारे मीडिया और आरक्षणवादी व्यवस्था में चल रहे एक मंथन के विक्षिप्त दौर में लिखा गया नाटक है। और यहां भी मंटो के अमर बात तोबा टेक सिंह की तरह सन कादर और वेद के बदलाव की शिक्षाविद उसकी तस्वीर असली साधना है और पागल करार दिये गए अनंत नारायण शर्मा के वक्तव्य द्वारा प्रस्तुत है बहुत संभव की कई लोगों को उनकी बौखलाहट तख़्त बढ़िया प्रीति कर लगे, सच भी हमेशा प्रीति कर नहीं होता।"[49]

मृणाल पांडे का यह नाटक मूलतः पत्रकारिता जीवन का भेद खोलता है। एक पत्रकार को जीवन में सत्ता के खिलाफ लिखने पर क्या-क्या झेलना

पड़ता है। कोई भी पत्रकार सरकार, राजनीति और उच्चवर्ग के खिलाफ लिखने की हिम्मत कैसे कर सकता है? खासकर हिंदी मीडिया में काम करने वाले पत्रकार के पास तो और विकल्प नहीं है? अंग्रेजी मीडिया में लिखना, बोलना थोड़ा अलग मगर हिंदी मीडिया के पास अनेक समस्याएं हैं। अनंत नारायण शर्मा पत्रकार है। वह सत्ता और सरकार के खिलाफ लिखता है। वह समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, शोषण और दगाबाजी के खिलाफ आवाज उठाता है इसलिए उसके कारखाने को बंद कर दिया जाता है, उसे जेल भेज दिया जाता है। हमारे समाज में जो भी अच्छा काम करता है सब उसके खिलाफ हो जाते हैं।

'शर्मा जी की मुक्ति कथा' नाटक, भरपूर आजादी वाले हमारे प्रजातंत्र में संपादक को पत्रकारों पर मालिकों द्वारा लगाए गए आरोप और अंकुश एवं उन पर किए जाने वाले अमानवीय अत्याचार का घिनौना रूप दिखाया गया है। भ्रम बस सवालों के बदल जाने से दोनों को पूरी तरह स्वस्थ करार देकर छोड़ना लोकतांत्रिक शासन प्रणाली की सच्ची और महत्वपूर्ण तस्वीर कोशिश करता है। यह दुर्भाग्य ही है कि जो यहां ईमानदार, धैर्यवान एवं परिश्रम की कमाई खाने वाला है उसे पागल करार देकर यातनाएं दी जाती हैं, उसका कागज,कलम छीनकर उसको बदनाम कर दिया जाता है। उसकी प्रतिभा एवं ऐश्वर्य को नीचा दिखाने का प्रयास किया जाता है। नाटक में अनंतनारायण की पत्नी माधवी सुशील, सदाचारी है। वह अपने पति की वफादारी को बखूबी समझती है। वह जानती है कि उसका पति निर्दोष है,

भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई लड़ रहा है मगर सत्ता पर सवार लोग अपनी रोटी सेकने के लिए उसे जेल भिजवा देते हैं।

स्त्री जीवन की गहराइयों को व्यक्त करने वाला यह नाटक यह भेद खोलता है कि हमारे समाज में ही माधवी और उसके साथ उसका परिवार यातनाएं झेल रहा है। माधवी जैसी स्त्रियां ईमानदारी, न्याय और जीवन यापन के लिए कब तक सामाजिक विरोधियों एवं राजनीतिक खलनायकों से कब तक लड़ती रहेंगी? अपने अस्तित्व एवं सम्मान के लिए क्या वह समाज में फैल रही अनीति एवं दगाबाजी को सहती रहेंगी? कब तक, जब तक वह समर्थ नहीं हो जाती है। अंत में सब कुछ नष्ट होने के बाद समाज की सच्चाइयों एवं ईमानदारी का फल सबको समझ में आ जाता है। राजनीत आज एक धंधे के अलावा कुछ नहीं। राजनीति का अर्थ पहले लोग कल्याण के संदर्भ में होता था। मगर आज लूट-खसोट, दम्भ-दगाबाजी में परिवर्तित हो गया है। चापलूसी करने वाले लोग ऊँची कुर्सी पाकर नीचे के लोगों पर तानाशाही करते है, अपने खिलाफ कुछ भी सुनना नहीं चाहते। यदि किसी ने उन पर आवाज उठाई तो उसकी आवाज दबा दी जाती है, यहां तक कि उसे जेल भेज दिया जाता है। यही हाल पत्रकार अनंत नारायण शर्मा का हुआ था।आज जो अमानवीय स्थिति अपनाने में सक्षम है वहीं इस धंधे में फिट हो जाता है। इमानदार और संवेदनशील व्यक्ति का पतन मृणाल जी ने अपने नाटकों के केंद्र में रखा है।

राजनीति के चक्कर में केवल स्त्री माधवी नहीं उसकी पुत्री नन्ही भी फसती है। जब उसके पिता को जेल भेजा जाता है तो वह चिंता में डूब जाती है कि वह अब कैसे पढ़ाई करेगी, घर मे पैसे कहां से आएगे। उसके नंबर भी परीक्षा में कम आने लगे हैं। बाल मनोविज्ञान की इस अवधारणा को प्रस्तुत करते हुए मृणाल जी ने मानवीय करुणा को उदघाटित करने का प्रयास किया है। राजनीति की शिकार मां और बेटी अब आगे का रास्ता कैसे तैयार करें यह भी एक बड़ा सवाल है? आज राजनीतिक लोग अंग्रेजी शासन के दमघुटे वातावरण से मुक्ति की बात बताकर और स्वतंत्रता की सुंदर कल्पना को परोसकर लोगों को मूर्ख बनाते है। वे इस तरह आम जनता को अपना हथियार बनाते है। अपनी तानाशाही छिपाकर लोगों के सामने भोले-भाले बनते है। अनंत नारायण शर्मा की पुत्री नहीं जानती है कि मेरे पिता भ्रष्टाचार एवं झूठी राजनीति के खिलाफ लिख रहे थे इसलिए उनको दण्ड मिला है इसलिए वह कहती है कि- "क्योंकि बाबू सच बोलते है किताब नहीं। पता है इस साल की किताब से तो तीन चैप्टर हटा दिए गए हैं। पर बाबू अपनी बात से नहीं हटते।"[50]

यहां माधवी मन की कड़वाहट को सबसे नहीं कहना चाहती मगर वह अंदर ही टूट रही है। वह इन मक्कारों की लीपा-पोती को बहुत अच्छी तरह से जानती है। वह ये भी जानती है कि बड़े लोग सत्ताधारी किसी की सुनते नहीं शायद इसलिए कहती है कि-"मुझे पता है न की जो बड़ों का कहना नहीं मानता उसके साथ क्या किया जाता है?"[51]

यहां लड़ाई केवल सत्ता से ही नहीं बल्कि अंग्रेजीयत से भी है। पत्रकार अनंत नारायण शर्मा अंग्रेजी में नहीं लिखता वह हिंदी में लिखता था यही कारण उसे जेल जाना पड़ा। भारतीय परिवेश में आज पश्चिम के प्रभाव से अंग्रेजी पर जोर दिया जा रहा है, हिंदी भाषा बोलने-लिखने में लोग शर्म महसूस करते है। अपनी बेइज्जती महसूस करने वाला यह समाज अपनी संस्कृति से कितना कटता जा रहा है उसे मालूम नहीं। नन्ही भी अंग्रेजी की क्रिया और कर्ता पर तर्क करती है। वह इतना तक कहती है कि- "अच्छा अगर बाबू अंग्रेजी में लिखते तो क्या तब भी वहां भेजे जाते ।"[52]

स्त्री-विमर्श की भूमिका तैयार करने वाला यह नाटक स्त्री-जीवन की आकांक्षा को टटोलता है। कैसे नन्ही और माधवी तड़प रही हैं।? इस पूरे समाज में। एक ओर सत्ता पक्ष स्वांग रच रहा है आदर्श का, वही दूसरी ओर इसी समाज में स्त्रियां उन्ही के सामने कैसी सताई जा रही है। स्त्री सशक्तिकरण की आवश्यकता ऐसे ही नही पड़ी। नारी की दशा का आकलन करते हुए मालती जोशी ने अपनी साक्षात्कार में कहा था कि- "मैंने स्त्री को दासी के रूप में कभी नहीं देखा, हालांकि वूमन लिबर्टी की की मै अंध समर्थक नहीं हूँ। नारी मेरी नजरों में गृहलक्ष्मी है। घर की सुख-शांति उसी के दम से है। बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास उसी के द्वारा संभव है।"[53]

नाटक में पत्रकार को डॉक्टर जानबूझकर पागल घोषित कर देता है। पत्रकार को पागल घोषित करना समाज में कुचक्र रच रहे लोगों की साजिश

है जिसमें सामान्य आदमी कैसे जीवित रहे? नाटक में ही नन्ही जब अपने पिता से मिलने जाती है तब उसे यह कह कर भगा दिया जाता है कि वह (उसके पिता) पागलखाने में है, तुम नहीं मिल सकती।माधवी भी उसी चिंता में जी-मर रही है। माधवी भी जिस शोषण का शिकार है क्या वह कभी न्याय पाएगी? शोषण तो जैसे नारी की नियति बन गया है। आदिम युग से आज तक नारी पिसी ही चली आ रही है। पहले शोषण शारीरिक या भावात्मक स्तर पर होता था, पर वर्तमान युग में अर्थतंत्र भी नारी की गर्दन पर सवार हो गया है। अब केवल भोग्य की वस्तु या बच्चे पैदा करने वाली मशीन बनकर रह गई है। साथ ही रुपया कमाने वाली यंत्र बनकर रह गई है। उसकी प्रजनन क्षमता को जी भरकर निचोड़ा जा रहा है। पिता-भाई पति कोई भी हो सबका दृष्टिकोण एक है। ससुराल हो या मायका इस दुष्चक्र से स्त्री को छुटकारा नहीं मिल सकता। नारी जीवन का चित्रण करते हुए मालती जोशी इस संदर्भ में स्पस्ट शब्दों में कहती हैं कि- "आज की भारतीय स्त्री इस एहसास से गुजर रही है और यह एहसास लगातार तीव्र होता है जा रहा है। प्राचीन काल से लेकर आज 21वीं सदी तक उसे परिवार, समाज, संस्कृति नैतिकता और कानून सभी बाधते आए हैं और गुलामी की हद तक जीने वाली मर्यादाओं को उस पर लादते रहे हैं। ताकि बहुविध शोषण की इकाई के रूप में उसका अस्तित्व बना रहे।"[54]

मृणाल जी ने अपने नाटकों में नारी स्वतंत्रता, शोषण, अधिकार, स्त्रियों की समस्याओं को बड़ी आसानी से दिखाया है। भाषा नाटक की नपी-तुली है। मृणाल जी ने नाटक में व्यक्त कटुता, सत्यता एवं वास्तविकता को एक सूत्र में बांधा है। शोषण से ब्यथित मनुष्य समाज में कैसी करा रहा है? एक स्त्री अपने ही जीवन में दूसरे की द्वारा कैसी यातनाएं झेल रही है? भाषा के प्रयोग से नाटक जीवंत हो गया है।

'सुपरमैन की वापसी' नाटक में स्त्री-विमर्श-

सुपरमैन की वापसी में मृणाल पांडे का रेडियो नाटक है। यह एक ऐसा नाटक है जिसमें सुपर मैन है, वह जगत के संपूर्ण कार्य को जल्दी से जल्दी अर्थात तुरंत करने में माहिर है। किसी भी कार्य को वह चुटकियों में करने की गारंटी लेता है। सुपर मैन उड़ना जानता है। वह अनेक प्रकार की कला से निपुण है। अपने दोस्त बंता सिंह के माध्यम से भारत आता है। नाटक में सुपरमैन खुद ही कहता है कि- "मैं सुपरमैन हूं दोस्त! मैं बिना सामान के अपने जादुई चोगे की मदद कहीं जा सकता हूं।"[55]

सुपर मैन की गर्लफ्रेंड का नाम लुइस लेन है। उसे पता नहीं कि सुपर मैन क्या है? वह उसे एक सीधा-साधा आदमी समझती है। बंता कहता है कि- "बुरा ना मानना यारों, पर तू जनानियों को ठीक से समझता नहीं। अजी उसे पता चल गया कि तू परदेसी है, तब तो उसका इश्क और रंग पकड़ जाएगा। अपने यहाँ तो हमेशा से चलन रहा है कि परदेसियों से ही प्रीत की जय।"[56]

स्त्रियों के बारे में जानकारी रखने वाले लोग कहां तक स्त्रियों पर बात करेंगे? बस उनके खान-पान, पहनावे और मर्यादा की। इससे ज्यादा स्त्री को समाज में कुछ मिला ही नहीं। मृणाल पांडे ने इस नाटक के माध्यम से स्त्रियों के दहेज की समस्या एवं लाचारी को दिखाया है। एक ग्राहक आता है वह सुपर मैन से यही सकता है कि- "हमारी लड़की की शादी हुई है चार महीने पहले, पर क्या है कि दामाद और उसके घरवाले अड़े हुए हैं कि जब तक नया स्कूटर नहीं देंगे, तो तब तक वो लड़की को मायके नहीं आने देंगे-तो क्या है कि इधर बाकी की दो बच्चों की फीस-वीस के कारण हाथ जरा तंग है-पर उधर लड़की की मां रो-रो के आसमान उठाए हैं सर पे? जरा सुपर मैन जी जोर डाल देते उन मरदूदों पर तो शायद वो माँग को स्थगित कर देते।"[57]

जहां ग्राहक को किसी की सहायता की जरूरत है, वही दूसरे पक्ष वाले उसकी लाचारी को नहीं समझ रहे। लड़की का बाप सुपरमैन के सामने यह समस्या रखकर हल चाहता है, मगर इसी समाज में रहने वाले लोग समझौते के नाम पर पैसे ठगते है। दम्भित एव घृणित समाज जब स्वेच्छाचारिता के लिए समझौता करता है तब मानव कैसे न्याय पाएगा? स्त्री जीवन की समस्याओं को मृणाल पांडे ने नाटक में अधेड़ स्त्री के माध्यम से रखा है। अधेड़ स्त्री जब सुपर मैन से कहती है तब वह सब कुछ मान लेता है लेकिन स्त्री क्या इन समस्याओं से हमेशा के लिए निजात पा सकती है? यह भी एक बड़ा सवाल है। स्त्री कहती है कि- "जभी तो मैं कहूं कि अरी

सबित्तो, जे जनानियों जैसा मरद तो ना लगे है सुपर मैन। अच्छा परे हट। हां जी सुपरमैन जी- हमने सुना है कि आप परेशानियां सुलझाओ हो। हमारी सुलझाओ तो जाने हम।"[58]

दूसरी समस्या यह है कि स्त्री किराएदार से मकान खाली कराना चाहती है। इस मुसीबत को भी वह सुपर मैन के सामने रखती है। स्त्री कहती है- "तो किराएदारों की अब यह मुसीबत होगी कि हम चाहते हैं कि उन्हें हटाना, और वो छोड़ने को राजी नहीं। अब जानो की किराए जो है मकानों के सो बढ़ते जा रहे है- ओ ये डटे हैं उसी पुराने किराए पर। खैर चलो उसे भी हम भूल जाएं- पर एक भारी मुसीबत है कि उनकी मरी लड़की ने हमारे भोले-भाले पप्पू की निगाह पर जादू कर डाला होगा। रट्ट लगाए हेगा लौडा की अम्मा मैं तो इसी से ब्याह करूंगा।तभी पप्पू के पापा और हम चाहते हैं कि रातोंरात इनको करें विदा, तो चैन होय।"[59]

समाज में स्त्रियां घर परिवार का ध्यान रखती है। वह परिवार में सामंजस्य चाहती है, मगर तमाम परेशानियों का सामना करना पड़ता है। घर से लेकर बाहर तक लोग उनके रहन-सहन, व्यवहार पर आंख लगाए रहते हैं। कहीं थोड़ी सी चूक होने पर फब्तियां कसने लगते हैं। नाटक के अधेड़ स्त्री इन्हीं बातों का जिक्र करती है। स्त्री जब पुरूष के बराबर हक और न्याय मांगने लगती है तो उसे बेलगाम आदि क्या-क्या नहीं कह दिया जाता है? यदि वह बर्दास्त करें तो समाज मूर्ख समझने लगता है। इसलिए नाटक में स्त्री कहती है कि-"यहां लड़के-लड़की की शादी ही नहीं करवाई

जाती है, और वह भी ऐसी जोड़-तोड़ से, जैसे लड़का लड़की नहीं एक अदद गाय या भैंस खरीद रहे हो- लड़की पसंद न आई तो फटाक से घर से निकाल दी! तौबा! तौबा! अपने मुल्क के माफिया के गुंडों से निपटना कितना आसान है, हिंदुस्तानी बापों की तुलना में।"[60]

नेता स्त्री सुपरमैन का भी का भी विरोध करती है। वह सुपर मैन की बात को इतनी आसानी से नहीं मान लेती। पुरुषों की हठधर्मिता एवं गुमराह की साजिश को बताती है।वह कहती है कि- "आप इनका पक्ष लेना बंद करिये जी। आप पुरुष लोग सब एक से होते हैं-अभी सुपरमून होती तो हम उससे तुरंत शिखर वार्ता कर सकती थी।"[61]

मृणाल पांडे का यह छोटा सा रेडियो नाटक है। इसमें पात्रों की संख्या भी कम है। स्त्री-विमर्श के आधार पर इसमें स्त्रियों की समस्याओं एवं दर्दों को मृणाल पांडे ने उकेरा है। इस नाटक में भारतीय संस्कृति पर पड़े पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भी दिखाई देता है। सुपर मैन अपनी गर्लफ्रेंड के लिए कुछ कीमती चीजे खरीदने भारत आता है। यहां आकर पैसा इकट्ठा करने के लिए कंसल्टेंसी खोलता है। मुसीबत में पड़ने वालों की समस्या हल कर के पैसा कमाता है। विज्ञापन के जरिये वह लोगों को आकर्षित करता है। आज हर जगह ऐसे लोग जरूर मिल जाते हैं, जो समाज का शोषण कर पैसा ऐठते है। सुपरमैन विदेशी सभ्यता का प्रतीक है। वह लोगों को आकर्षित कर पैसा कमाता है। समकालीन महिला नाटककारों मे मृणाल

पांडे का प्रमुख स्थान है। अपने आस-पास की स्थिति को सूक्ष्म रूप से देख-परख कर उन्होंने अपना सृजन कार्य संपन्न किया है।

तेजी से बढ़ते हुए युग में हमारे सामने के समाज को प्रस्तुत करने में मृणाल जी का महत्वपूर्ण योगदान है। बाजारीकरण का प्रभाव, विदेशी संस्कृति का प्रभाव, समाज के हर क्षेत्र में होने वाला दोमुंहापन आदि को अपने नाटकों का विषय बनाया है। हमारे जीवन में पड़ रहे सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक हर पहलुओं पर मृणाल जी ने मार्मिक प्रभाव डाला है यही कारण है कि मृणाल पांडे के नाटक अत्यंत प्रासंगिक है।

मृणाल जी की हर विधाओं में स्त्री-विमर्श दिखाई देता है परंतु नाटकों में इसका प्रभाव थोड़ा कम है। जहां अन्य विधाओं में स्त्री को केन्द्र में रखा, वही नाटकों में समाज को, समस्याओं को, विसंगतियों, विडंबनाओं को प्रस्तुत किया है। उनके नाटकों में आज के भ्रष्टाचार, मानवता, राजसत्ता की मक्कारी, इमानदारी, आदमी की विवशता आदि का जिक्र मिलता है। इनके नाटकों की सबसे बड़ी खासियत यह है कि उनमें स्त्री-पुरुष संबंधों के सीमित दायरे के बदलते सामाजिक संदर्भ प्रस्तुत है। मंचीयता के साथ-साथ शिल्प विधान की दृष्टि से मृणाल पांडे के नाटक अत्यंत ह्रदयग्राही हैं।

'धीरे-धीरे रे मना' नाटक में स्त्री-विमर्श-

कुल छः पृष्ठोंमें लिखा गया यह नाटक पारिवारिक जीवन की झांकी प्रस्तुत करता है। साथ ही साथ स्त्री उमा के दैनिक कामकाज, उसकी व्यस्तता एवं उसकी जिंदगी की परेशानियों का खाका प्रस्तुत करता है।

लोग समझते हैं कि स्त्रियों को घर में क्या कार्य होते होंगे? बस यही न कि खाना बनाकर बैठा जाओ लेकिन यदि स्त्रियों के दैनिक कामकाज से लेकर जीवन की समस्त गतिविधियों का मूल्यांकन किया जाए तो तमाम आवश्यकताएं, परेशानियां हमारे सामने आ जाती हैं। स्त्री उमा घर में सब की देखभाल करती है। परिवार को साथ लेकर चलना चाहती है। नाटक के प्रारंभ में जब उसका बच्चा एवं बच्ची दोनों अपने सामान मांगते है (बच्चा मोजा मांगता है, बच्ची पिकनिक के लिए पैसे) तो वह अपनी झुंझलाहट को व्यक्त करते हुए कहती है कि- "हां हां देती हूं! सब्र की कैसी कमी है सारे लोगों में! जिसे देखो, हवा के घोड़े पर सवार! 5 मिनट की देरी किसी को सहन नहीं होती। मेरे बीस हाथ तो है नहीं।"[62]

रोजमर्रा की परेशानियों को दूर करने का प्रयास उमा करती है। बच्चों का ध्यान स्वयं रखती है, नौकरानी पर नहीं छोड़ती। हमारे समाज में बचपन से लड़कियों को शांत, सुशील बनने की शिक्षा दी जाती है, लड़की होने का एहसास बचपन से ही कराया जाता है ज्यादा मत बोलो, शांत रहो, सब का सम्मान करो, कहीं घूमों, मत ऐसी बातें अक्सर लड़कियों को बताई जाती है। संपूर्ण नियम-कानून केवल लड़कियों पर लागू होते हैं। शादी-विवाह के बाद भी उसे अपनी सीमा में रहने को कहा जाता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था उसे हमेशा दबाए रखना चाहती है। आगे जाकर परिवार की स्त्री भी नई पीढ़ी की लड़कियों को यही सीख देती है। उमा भी यही बात अपनी लड़की से कहती है- "अरे जो काम करने को कहो, बस बहस पर उतर

जाएगी कि मैं यह क्यों करूं? मुझे क्यों नहीं देती? अरे लड़की है, लड़की की तरह सहनशील बनकर नहीं रहेगी तो कैसे होगा।"[63]

उमा-रमेश में बीच में नोक-जोक होती रहती है। रमेश पारिवारिक रिश्ते को बनाए रखना चाहता है। उमा भी अपने परिवार में अलगाव नहीं चाहती है लेकिन बीच-बीच में रमेश के छोटे भाई सुरेश की बातों से जलती है। उसके कार्यों को देखकर उसको गुस्सा भी आता है। हमारे समाज में पारिवारिक रिश्तों की डोर कमजोर होती जा रही है। भाई-भाई से अलग होता जा रहा है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से केवल खाने-पीने, मौज-मस्ती में दुनिया मस्त है। अपने स्वार्थपन से मनुष्य अपनों से ही अलग होता जा रहा है। उमा रमेश की बातों का स्पष्ट उत्तर देती है। वह किसी भी कीमत पर किसी को अपने ऊपर हावी नहीं होने देना चाहती। आज स्त्री सभी क्षेत्रों में आगे निकल रही है। जब स्त्री में चेतना जगेगी तब स्त्री-विमर्श अपने मजबूत शिखर पर होगा। स्त्री उमा दोनों भाइयों के रिश्तों को लेकर कहती है कि- "क्यों? मुझे क्या टेंशन होगा? तुम्हारा छोटा भाई है! उसका ऊंच-नीच तुम ही संभालोगे! मेरा कहा तो तुम सबको सहन नहीं होता! सहनशीलता का मुझे उपदेश देते रहते हो। खुद तुम इतने ही धीरज वाले हो क्या? मैं होती कौन हूं इस घर में कुछ कहने वाली।"[64]

आज देश में तलाक की समस्या बढ़ रही है। बातों-बातों में नाराजगी फिर तलाक, लोग शादी-विवाह को खिलौना समझकर बड़ी जल्दी रिश्तो को तोड़ देते और अकेला जीवन जीने लगते हैं। पति-पत्नी के अलगाव की

समस्या समाज को किस दिशा में ले जाएगी? क्या रिश्तो का महत्त्व अच्छा रहेगा या नहीं यह तो पता नहीं लेकिन कुछ वर्षों में जो तलाक की समस्या हुई है, वह रिश्तो को, परिवार को समाज को, तोड़कर रख दिया है। दगाबाजी, चाटुकारिता में जीने वाला समाज स्त्री-पुरुष किसी के साथ न्याय नहीं कर सकता। खासकर स्त्री को तो समाज में जगह ही नहीं बचती। पात्र सुरेश का जीवन एकांकी हो गया है क्योंकि उसकी शादी टूट गई है, पत्नी से तलाक हो गया है। अब अनमना सा रहता है। उसको टी.वी.सीरियल और समाजवाद की बातें अच्छी नहीं लगती। इसलिए सुरेश झल्लाकर कहता है कि- "जानता हूं। कचहरी में कमाऊ बीवी से भरोसा मांगने वाले बेकार, नरपुंगव हमारे समाजों की पकड़ में रोज तो आते नहीं न। मैं उनके लिए एक लीड स्टोरी बन गया, जो चट-पट समाज का गूंगापन, उसकी नैतिक हकलाहट मिटा देता है।"[65]

उमा सुरेश की कुछ कार्यों से तंग आकर उससे दिलचस्पी नहीं रखती। सुरेश को समाज से मोहभंग हो गया है। अब सामाजिक न्याय, सामाजिक सिद्धांतो को नहीं मानता। वह जानता है कि समाज में मनुष्य अपने को लेकर स्वार्थी हो गया है। समाज भी आज बड़े रईसों के इशारे पर चलने लगा है। समाज में ही आज कौन किसकी सुनता है? सामाजिक मोहभंग के कारण सुरेश ऐसा हो गया है। मनुष्य अपने ही सामाजिक लोगों द्वारा दरकिनार कर दिया जाता है, तब द्वंद्व में फंस जाता है फिर वह विरोध का रास्ता तैयार कर लेता है। मृणाल पांडे ने सामाजिक जीवन की विसंगति

एवं पारिवारिक उत्पीड़न आदि को नाटक के केंद्र में रखने का प्रयास किया है। सामाजिक द्वंद्व में भटकता सुरेश कहता है कि- "बेहद धीरज के साथ जीवन के पहले 15 बरस मैंने समाज के खुरदुरे तलवे सहलाने में ही गुजारे है। क्योंकि मुझे उम्मीद थी कि समाज न्याय करेगा ही। मैंने सबसे गन्दे इलाकों में घुटने-घुटने तक कीचड़ में धंसकर अपने हृदयहीन शहरों में एक सभ्य समाज के गरीबों के लिए एक बेहतर समाज के सपने देखने की कोशिश की। तब मैं समझता था कि देश की नैतिकता का भार हमारे मध्य वर्ग के मजबूत शहरी कंधो पर टिका है कि उसके स्वयंसेवकों की सेना बनाकर इस गंदगी के बीच भी कीचड़ में कमल-वमल की तरह खिला जा सकता है। पर अब मेरा वो धीरज, वह सहनशीलता मर चुके हैं।"[66]

आज बच्चे बड़े हो जाते है तब वे माता-पिता का ध्यान रखना छोड़ देते हैं। विदेशी प्रभाव के कारण वह उनके साथ रहना ही नहीं चाहते, उनसे कतराते रहते हैं। रमेश अपना परिवार लेकर शहर में रहता है जबकि सुरेश पिता के साथ गांव में रहता है। रमेश अपने पिता से दूर रहकर सेवा करने कि केवल सीख देता है जबकि वह परिवार से स्वयं दूर है। सुरेश कहता है कि आप लोग पिताजी से दूर रहते है। उनकी सहनशीलता को नहीं जान पाए। एक बाप अपने मन के दर्द को किस तरह छुपा रखा है, इसे कौन सुने? आप लोगों को उनकी एक बात भी पसंद नहीं। उनके कार्यों को देखना आप लोगों को अच्छा नहीं लगता। सुरेश कहता है कि- "नहीं इतनी सी बात नहीं है ये- बाबूजी का यहां रहना भी तुम में से कौन सह पाता था।

उनके कपड़े, उनकी बोली, उनका खासना, खास-खासकर बलगम थूकना, बच्चों को देहाती कविताएं सुनाना, यह- तुम सब लोगों को पसंद नहीं था।"[67]

उमा सुरेश की दूसरी शादी करना चाहती है। वह मानसी नाम की किसी लड़की से शादी करने को कहती है। मानसी किसी विभाग में अफसर है लेकिन सुरेश विवाह नहीं करना चाहता। इन रिश्तों से उसका मोह भंग हो गया है इसलिए वो कहता है कि अब तो कभी-कभी मैं मक्खियों से बात करने लगता हूँ, पर इंसानो से बात करने में अब भी डरता हूँ। उमा सुरेश को सहनशील बनने को कहती है। स्त्रियां स्वभाव से ही सहनशील होती है इसलिए उमा सुरेश को भी शांत और विनम्र बनाना चाहती है। उसे रिश्तों में विश्वास करने तथा सामाजिक न्याय में विश्वास दिलाती है। सामाजिक मूल्यों से अलग नहीं होने देना चाहती। यह नाटक सामाजिक मूल्यों को व्यक्त करता है। यह मनुष्य की सार्थकता एवं जीवन की सच्चाई को बताता है। उमा कहती है कि- धीरे धीरे रे मना, सब कुछ होय। तुम थोड़े से सहनशील बनों, थोड़ा धीरज रखो, सब ठीक हो जाएगा। सुरेश तुम सामाजिक मूल्यों का मनन करो, चिंता न करो। मनुष्य के मूल्य को समझो। रिश्तो में टकराहट होती है लेकिन मनुष्य को मूल्यों को समझकर उनको बनाए रखना चाहिए, तभी परिवार, घर- समाज चल सकता है।

मृणाल पांडे ने भाषा के माध्यम से नाटक में सामाजिक मूल्यों की खोज की है। भाषा स्पष्ट एवं रुचिकर है। देसी शब्दों के साथ तत्सम, तद्भव शब्दों का इस्तेमाल भी धड़ल्ले से किया गया है। कहीं-कहीं अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। भाषा के प्रभाव के कारण नाटक में भाषिक संस्कार भी दिखाई देता है। मृणाल पांडे की भाषा स्त्री-विमर्श की बुनियादी आधार की पड़ताल करती है। भाषा मनुष्य के विचारों को व्यक्त करती है, यही कारण है कि मृणाल जी ने भाषा के माध्यम से नाटक के बीच-बीच में सामाजिक बोलचाल को रखने का प्रयास किया है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 19
2. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 52
3. शिवमूर्ति- केशर कस्तूरी, (2015) राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 86
4. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 53
5. शर्मा भगवती चरण- सम्पूर्ण नाटक, (2004) राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 73

6. रस्तोगी गिरीश- हिन्दी नाटक का आत्मसंघर्ष, (2002) लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 77
7. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 69
8. डॉ. पाण्डेय श्याम सुंदर- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक संवेदना और शिल्प, (2012) ज्ञान प्रकाशन कानपुर, पृष्ठ संख्या 46
9. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 49
10. मिश्र लक्ष्मी नारायण- सिन्दूर की होली, (2002) भारती भण्डार इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 28-29
11. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 65
12. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 89
13. राकेश मोहन- आधे-अधूरे, (1982) राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 54
14. प्रियंवदा ऊषा- वापसी, (2015) राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या 25
15. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 99

16. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 98
17. संपादक, शुक्ल केसरी नारायण- भारतेंदु के निबंध (2008) बनारस सरस्वती मंदिर, पृष्ठ संख्या 40
18. अमरकांत- दोपहर का भोजन(प्रतिनिधि कहानियां से संकलित) (2013) राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या 70
19. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 104
20. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 105
21. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 117
22. प्रसाद जयशंकर- ध्रुवस्वामिनी, (1986) लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 58
23. राकेश मोहन- आधे-अधूरे, (1982) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 83
24. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 123
25. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 34

26. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 135

27. मिश्र लक्ष्मी नारायण- सिन्दूर की होली, (2002) भारती भण्डार इलाहाबाद , पृष्ठ संख्या 40

28. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 141

29. राकेश मोहन- आषाढ़ का एक दिन, (1997) राजकमल प्रकाशन दिल्ली ,पृष्ठ संख्या 85

30. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 152

31. विजय श्री.के.वी.- स्त्री का प्रतिरोध (चित्र मुदगल के उपन्यास एक जमीन अपनी) (2010) जवाहर पुस्तकालय मथुरा, पृष्ठ संख्या 14

32. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 160

33. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 161

34. डॉ तिवारी रंजन- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक (जनसाधारण के परिपेक्ष्य में) (2011) आशीष प्रकाशन काम्प्लेक्स रोड पी.रोड कानपुर, पृष्ठ संख्या 187

35. डॉ तिवारी रंजन- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक (जनसाधारण के परिपेक्ष्य में) (2011) आशीष प्रकाशन काम्प्लेक्स रोड पी.रोड कानपुर, पृष्ठ संख्या 187

36. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 163

37. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 164

38. डॉ काले विट्ठलराव पुष्पलता- उत्तरशती के कथा लेखिकाओं के साहित्य में स्त्री-विमर्श, (2018) पूजा पब्लिकेशन नौबस्ता कानपुर, पृष्ठ संख्या 27

39. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 188

40. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 200

41. डॉ काले विट्ठलराव पुष्पलता- उत्तरशती के कथा लेखिकाओं के साहित्य में स्त्री-विमर्श, (2018) पूजा पब्लिकेशन नौबस्ता कानपुर, पृष्ठ संख्या 27-28

42. शिवमूर्ति- केशर कस्तूरी, (2015) राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 139

43. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 199

44. रस्तोगी गिरीश- हिन्दी नाटक का आत्मसंघर्ष, (2002) लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 92

45. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 243

46. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 262

47. शुक्ल अर्चना- मृणाल पाण्डे का रचना संसार, (2017) लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद , पृष्ठ संख्या 173

48. डॉ वी.यस. अम्बिली- डॉ शशिप्रभा शास्त्री का कथा साहित्य: कथ्य एव शिल्प (2015) अभय प्रकाशन कानपुर, पृष्ठ संख्या 87

49. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 10

50. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 312

51. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 312

52. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 313

53. डॉ तुडप्पा महादेवी- समकालीन महिला कहानीकार, (2019) विनय प्रकाशन कानपुर, पृष्ठ संख्या 14

54. डॉ तुडप्पा महादेवी- समकालीन महिला कहानीकार, (2019) विनय प्रकाशन कानपुर ,पृष्ठ संख्या 35

55. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 350

56. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 351

57. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 358

58. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 362

59. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 363

60. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 371

61. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 370

62. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 385

63. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 386

64. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 386

65. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 388

66. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 390

67. पाण्डे मृणाल- सम्पूर्ण नाटक, (2011) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 391